राजनीतिक रिपोर्ट

I- अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियां

पिछले तीन सालों में सबसे महत्वपूर्ण घटना रही है विश्व व्यापी आर्थिक संकट। इस संकट ने न केवल समूची दुनिया को समेटा बल्कि इसने विश्व पूंजीवादी व्यवस्था की चूलें हिला कर रख दीं। इसने उदारीकृत–वैश्वीकृत साम्राज्यवादी पूंजीवादी व्यवस्था के सारे अंतर्विरोधों को खोल कर रख दिया। इसने पहले ही बहुत बुरी हालत में पहुंचा दी गई मजदूर मेहनतकश जनता की स्थिति को अत्यंत गंभीर बना दिया। लेकिन साथ ही इसने पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष को भी तीव्र कर दिया।

समूची विश्व पूंजीवादी व्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित करने वाला यह संकट जुलाई 2007 में संयुक्त राज्य अमेरिका के आवास गिरवी आधारित परिसंपत्तियों के सब प्राइम बाजार से शुरू हुआ और इसने देखते ही देखते दुनियाभर के वित्तीय बाजार को अपने कब्जे में ले लिया। कई चरणों में गुजरते हुए यह सितंबर 2008 में वहां पहुंच गया जहां साम्राज्यवादी दुनिया की सभी सरकारों के समवेत प्रयास से ही विश्व पूंजीवाद की वित्तिय व्यवस्था को ध्वस्त होने से बचाया जा सका। साम्राज्यवादी सरकारों ने हजारों अरब डालर बाजार में झोंके और 'बाजार में हस्तक्षेप न करने' की अपनी स्वघोषित विचारधारा पर दिवालियेपन की मोहर लगा दी। छोटे–बड़े सैकड़ों वित्तीय संस्थान दिवालिया हो गये और उनको निगल कर बड़े वित्तीय संस्थान और भीमकाय हो गये।

इस वित्तीय संकट में केवल भयंकर रूप से फूले वित्तीय बुलबुले का ही हाथ नहीं था। आम ठहराव के इस दौर में वास्तविक उत्पादन में जो थोड़ी बहुत तेजी 2003 के बाद आई थी वह 2006 के अंत तक धीमी पड़ने लगी थी और 2007 के उत्तरार्धा में तो वह मंदी की ओर बढ़ने लगी थी। इसने वित्तीय विघटन को और तेज कर दिया और गंभीर वित्तीय संकट ने अपनी बारी में उत्पादन–वितरण पर गंभीर असर डाला। 2008 में गहराती मंदी 2009 में वहां पहुंच गई जहां 'महामंदी' का भूत पूंजीपति वर्ग को सताने लगा। वास्तविक अर्थव्यवस्था में 3 से 6 प्रतिशत तक गिरावट दर्ज की जाने लगी जबकि वैश्विक व्यापार बारह प्रतिशत से भी ज्यादा गिर गया। दुनिया की सारी साम्राज्यवादी–पूंजीवादी सरकारें अपने बजट घाटे की चिंता छोड़कर इस गिरावट को रोकने में लग गईं। प्रोत्साहन के नाम पर उन्होंने अरब डालर बाजार में झोंक दिये।

इस संकट की नवीनतम कड़ी के तौर पर यूनान की सरकार दीवालिया होने की कगार पर पहुंच गई। इसे बैसाखी लगाने के लिए यूरोपीय संघ और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा 110 अरब डालर का इन्तजाम किया गया है। यूनान के अलावा स्पेन, पुर्तगाल, इटली और आयरलैण्ड की सरकारें भी इस ओर बढ़ रही हैं। इंग्लैण्ड की सरकार भी बहुत सुरक्षित नहीं है। यह सब वित्तीय पूंजीपतियों पर खुले खजाने लुटाने का नतीजा है, जिसकी कीमत ये सरकारें मजदूर वर्ग सो वसूलने का प्रयास कर रही हैं।

लेकिन ऐसा करके वे अभी तक केवल संकट को थामने में ही कामयाब हो पायी हैं। वर्तमान संकट के तात्कालिक कारकों को भी वे हल करने की ओर जरा भी नहीं बढ़ पायी हैं। वे सारे जहां के तहां हैं और विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के गहरे रसातल में जाने की संभावना बनी हुयी है। स्वयं साम्राज्यवादी हलकों में भी 1990 के दशक के जापानी ठहराव जैसे ठहराव की सारे साम्राज्यवादी मुल्कों में आशंका व्यक्त की जा रहीं है।

वर्तमान संकट ऐसा संकट है जिसका एक तरह से दशकों से इंतजार था। 1980 के दशक के मध्य से ही अत्यंत गंभीर वित्तीय और फिर वास्तविक उत्पादन–वितरण व्यवस्था में संकट की आशंका व्यक्त की जाती रही है। और यह अकारण नहीं था।

1970 के दशक की शुरुआत में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कायम ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के ध्वस्त हो जाने के बाद से ही दुनिया भर के साम्राज्यवादियों ने अपने मुनाफे की गिरती दर को रोकने के लिए तथाकथित कल्याणकारी राज्य पर हमला बोल दिया। इसका नेतृत्व अमेरिकी व ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने किया। इस हमले का मूल स्वर था– वित्त पूंजी को सारी दुनिया में लूट की छूट। इसके तहत स्वयं साम्राज्यवादी देशों में मजदूर वर्ग की श्रम शक्ति की बिक्री की शर्तों को बहुत कमजोर कर दिया गया। मजदूर वर्ग की मजदूरी गिरने लगी, काम के घंटे बढ़ने लगे, काम की तीव्रता बढ़ने लगी, कार्य स्थल पर पस्थितियां बुरी होने लगीं, यूनियनों की सदस्यता घटने लगी, राज्य द्वारा प्रदत्त सुविधाओं में कटौती की जाने लगी। समूची आय में मजदूर वर्ग का हिस्सा घटने लगा और पूंजीपति वर्ग का बढ़ने लगा।

वित्त पूंजी का हमला साम्राज्यवादी देशों के भीतर ही नहीं बाहर भी था। तीसरी दुनिया के पिछड़े पूंजीवादी देशों के सीमित अलगाव को तोड़कर उसे एकीकृत विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में समेट लेने के लिए

सैकड़ों तरह के उपाय किये गये। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष व विश्व बैंक की शर्तें इसमें से एक थीं। इन देशों में पूंजी निवेश और तैयार माल बेचने के लिए साम्राज्यवादी देशों की वित्त पूंजी को खुली छूट चाहिए थी। इन देशों के मजदूरों का तो भयंकर शोषण होना ही था, वित्त पूंजी यहां छोटी सम्पत्ति के अपहरण से भी अपने पूंजी संचय में वृद्वि करना चाहती थी। छोटे सम्पत्ति वालों की 'बेदखली के जरिये संचय' बड़े पैमाने पर होने लगा। इन देशों में मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता का जीवन स्तर गिरने लगा।

पहले के समाजवादी देशों, जहां अब पूंजीवादी पुनर्स्थापना हो चुकी थी, वहां भी साम्राज्यवादी वित्त पूंजी ने अपनी आक्टोपसी भुजाएं फैलाई। 1980 के दशक के अंत में सोवियत खेमा बिखरने और इन देशों में खुले पूंजीवाद की स्थापना से तो साम्राज्यवादी पूंजी के पौ बारह हो गये। खासकर पूर्वी यूरोप के देशों और सोवियत संघ के घटक देशों में साम्राज्यवादी वित्त पूंजी ने अपना शिकंजा कसा। रूस के प्राकृतिक संसाधानों की बेतहाशा लूट होने लगी। इन देशों में मजदूर वर्ग का जीवन स्तर तो सचमुच में रसातल में चला गया।

वित्त पूंजी की, साम्राज्यवादियों की साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की इन नीतियों के चलते वित्त पूंजी के समूची दुनिया में प्रवाह को मुक्त आवागमन का अवसर प्राप्त हुआ। उत्पादन में लगी पूंजी और उससे भी ज्यादा वित्तीय कारोबार में लगी हुई पूंजी दुनिया में मुक्त आवागमन करने लगी। इसे अंततः विश्व व्यापार संगठन में संहिताबद्ध कर दिया गया।

वित्त पूंजी के इस साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का उद्देश्य था पूंजी के गिरते मुनाफे को रोकना और मुनाफे को बढ़ाना। साम्राज्यवादी वैश्वीकरण ने इसे हासिल किया लेकिन यह मूलतः मजदूर वर्ग के जीवन स्तर को नीचे ढकेलकर तथा छोटी सम्पत्ति का सम्पत्तिहरण कर हासिल किया गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि पूंजी निवेश और संचय की समस्या और विकराल होती गई। एक ओर पूंजीपति वर्ग का मुनाफा बढ़ा तो दूसरी ओर उससे पूंजी निवेश की समस्या और विकराल हुयी।

उदारीकरण–निजीकरण–वैश्वीकरण के इस दौर में वित्तीय कारोबार और खासकर वित्तीय सट्टेबाजी ने शुरुआत से ही अग्रणी भूमिका करनी शुरू की। जैसे–जैसे साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का यह दौर आगे बढ़ा वैसे–वैसे यह भी आगे बढ़ता गया। निवेश की समस्या से जूझ रही वित्त पूंजी अधिकाधिक वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी में उड़ान भरने लगी। 1980 के दशक में सट्टेबाजी के ढेरों नये उपकरणों का आविष्कार हुआ और उसके बाद यह सट्टेबाजी साल दर साल आसमान की ओर बढ़ती गई। वित्त पूंजी के वैश्विक मुक्त प्रवाह ने इसके लिए सारी शर्तें उपलब्ध करा दी थीं। वित्तीय कारोबार और वित्तीय सट्टेबाजी के मुकाबले में उत्पादन और वितरण लगातार दूसरे दर्जे की स्थिति में चला गया।

वित्तीय कारोबार व सट्टेबाजी और भी निर्द्वन्द्व होकर आगे बढ़ती रही क्योंकि साम्राज्यवादी वित्तीय अधिपति आश्वस्त थे कि आवश्यकता पड़ने पर सरकारें उन्हें बचाने के लिए आगे आयेंगी। 1980 व 1990 के दशकों में साम्राज्यवादी सरकारों ने छोटे पैमाने पर यह कई बार किया भी था। साम्राज्यवादी–पूंजीवादी सरकारों का बाजार में हस्तक्षेप न करने का नारा केवल मजदूर वर्ग व मेहनतकश जनता के लिए ही था। वित्त अधिपतियों के संकट में फैसले ही सरकारें अपनी पूरी ताकत और खजाना लेकर हाजिर हो जाती थीं। एकाधिकार पूंजीवाद के इस उच्चतम दौर में यही होना था। इसमें पूंजीपति वर्ग को राज्य से अलग नहीं किया जा सकता।

वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी की आसमान छूती स्थिति से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि इसमें लगी पूंजी उत्पादन और वितरण में लगी पूंजी के खिलाफ खड़ी है। वास्तव में ये एक ही वित्त पूंजी के अलग–अलग हिस्से हैं। उत्पादन–वितरण बहुराष्ट्रीय निगमों, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों तथा सट्टेबाजी में लगी कंपनियों को अलग–अलग नहीं किया जा सकता। ये सब ऐ दूसरे से गुंथी हैं। ये एक दूसरे में पूंजी निवेश, निदेशक मंडल तथा सब्सिडियरी कंपनियां सभी तरीकों से एक दूसरे से गुंथी हुयी हैं। गुंथी हुयी वित्त पूंजी में पिछले तीन–चार दशकों में वित्तीय कारोबार और सट्टे बाजी का हिस्सा उत्पादन और वितरण के मुकाबले बहुत तेजी से बढ़ते गया है। सभी निगमों के मुनाफे में वित्तीय कंपनियों का हिस्सा पिछले चार दशकों में 15 प्रतिशत से बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया है।

उत्पादन और वितरण के छोटे आधाार पर खड़ा वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी का यह विशाल तंत्र अपने आप में ही बहुत अस्थिर था। इसकी यह अस्थिरता लगातार बढ़ती चली गई। स्थिति वहां पहुंच गई जहां हल्की सी सिहरन भी समूचे तंत्र को झकझोर सकती थी और समूचे तंत्र के धवस्त हो जान का खतरा पैदा कर सकती थी। 2007 के उत्तरार्धा में यही हुआ।

इस संकट ने इक्कीसवीं सदी की शुरुआत के वर्तमान साम्राज्यवादी–पूंजीवादी दुनिया के सारे अंतर्विरोधाों को उजागर कर दिया। इसने साम्राज्यवाद के मरणासन्न, परजीवी चरित्र को अंधों के सामने भी स्पष्ट कर दिया। साम्राज्यवादियों द्वारा पिछले दो दशकों से दिखाया जा रहा विजयोल्लास चुटकियों में हवा हो गया। 'कोई

विकल्प नहीं' का नारा चुपके से भुला दिया गया। समाजवाद के उभार का हौवा साम्राज्यवादियों के सिर पर मंडराने लगा।

एकाधिकारी पूंजीवाद की वर्तमान स्थिति में सामाजीकृत और व्यक्तिगत हस्तगतकरण का अंतर्विरोध अत्यन्त उच्च स्तर पर पहुंच गया है। विकेन्द्रीकृण केन्द्रीकरण के तहत उत्पादन और वितरण ने उत्पादन और वितरण के समाजीकरण को पहले के मुकाबले बहुत ज्यादा ऊंचे स्तर पर पहुंचा दिया है। इसे कार कम्प्यूटर का उत्पादन करने वाली कंपनियों और खुदरा व्यापार करने वाले मार्ट जैसी कंपनियों के उदाहरण से समझा जा सकता है।

लेकिन इसके दूसरे ध्रुव पर स्थिति यह है कि दुनिया की एक–चौथाई आबादी भूखी सो रही है। तीन चौथाई आबादी किसी तरह गुजर–बसर कर रही है। दुनिया में कंगालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इसके बरक्स दुनिया में मुट्ठी भर अरब पतियों की पूंजी में बेशुमार बढ़ोत्तरी हो रही है। कंगालों की संख्या में वृद्वि और अरब पतियों की पूंजी में वृद्वि एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं।

इन अंतर्विरोधों ने अपनी अभिव्यक्ति साम्राज्यवादी दुनिया में आम ठहराव तथा वर्तमान तीखे संकट में पाई है। ज्यादातर आबादी को भुखमरी की अवस्था मे ढकेलकर अपना मुनाफा बढ़ाने वाली पूंजी अपने उत्पादन के लिए बढ़ते बाजार की अपेक्षा नहीं कर सकती। उसे तब सट्टेबाजी जैसी परजीवी गतिविधियों की ओर बढ़ना ही होगा। बीसवीं सदी के शुरुआत के इंग्लैड की स्थिति की ओर क्रमशः अन्य साम्राज्यवादी देशों की भी नियति है। लगातार जुआघर में तब्दील होते जाना साम्राज्यवादी देशों की सामान्य गति है।

एक ओर दुनिया भर में बढ़ती हुयी गरीबी, कंगालीकरण और भुख मरी (साम्राज्यवादी देशों सहित) और दूसरी ओर विशाल पैमाने की वित्तीय सट्टेबाजी आज के एकधिकारी पूंजीवाद की सामान्य विशेषता है। यह लगातार और ज्यादा मरणासन्न व परजीवी होते जाते पूंजीवाद की विशेषता है।

एकाधिकारी पूंजीवाद के वर्तमान समय में उद्यम के पैमाने नियमबद्धता और सारे समाज के पैमाने पर अराजकता ने भी असीम रूप धारण कर लिया है। वाल मार्ट जैसी कंपनियां सारी दुनिया के पैमाने पर अपने कारोबार का योजनाबद्ध संचालन कर रही हैं। उसमें कहीं कोई अराजकता नहीं है। लेकिन तब भी समूची दुनिया के पैमाने पर कुल उत्पादन एवं वितरण एकदम अराजक है। यही नहीं, विशाल वित्तीय सट्टेबाजी ने इस अराजकता को कई गुना बढ़ा दिया है। विशाल वित्तीय निगम सारी दुनिया में अपना कारोबार फैलाए हुए हैं लेकिन वित्तीय बाजार की सट्टेबाजी न केवल उसकी स्थिति को अस्थिर कर रही है बल्कि समूची पूंजीवादी व्यवस्था को ही डांवाडोल कर देती है।

संचार तकनीक ने सारी दुनिया के पैमाने पर एकीकरण को बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंचा दिया है। उसने उत्पादन वितरण को एक सूत्र में पिरोने, पूरी दुनिया के पैमाने पर उनका संचालन करने की स्थिति पैदा की है। इसने सारी दुनिय के वित्तीय बाजार को बहुत गहन रूप से एक–दूसरे से गूंथ दिया है। लेकिन इस सबका परिणाम हुआ है वैश्विक पैमाने पर और ज्यादा अस्थिरता। हलचल न्यूयार्क में होती है और तबाह हो जाता है अफ्रीका के किसी पिछड़े देश का बैंक। मौसम में उलटफेर होती है आस्ट्रेलिया में और आत्महत्या करते हैं भारत के किसान।

इतना ही नहीं, इस गहन एकीकरण ने अपनी बारी में समूची पूंजीवादी दुनिया को अत्यंत गंभीर संकट में ढकेल देने का सामान जुटाया है। वर्तमान संकट इसका एक उदाहरण भर है। साम्राज्यवादी–पूंजीवादी विश्व में वैश्विक पैमाने पर कायम अराजकता वैश्विक एकीकरण का यही प्रभाव पैदा कर सकती है। यदि वैश्विक दुनिया गांव बन गई है तो यह वैश्विक गांव किसी आर्थिक सुनामी से बच नहीं सकता। यह अलग बात है कि इस सुनामी के सबसे ज्यादा शिकार गांव के कमजोर लोग ही होंगे।

एकाधिकारी पूंजीवाद के वर्तमान अंतर्विरोध किस हद तक तीखे हो गये हैं वह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि पूंजीपति वर्ग के पास वर्तमान संकट से निकलने के लिए कहने के लिए भी कोई रास्ता नहीं है। वह ज्यादा से ज्यादा जो कर सकता है वह यह कि द्वितीय विश्व युद्व के बाद के नियंत्रित और तथाकथित कल्याणकारी राज्य वाले पूंजीवाद की ओर लौट जाये। लेकिन इसी के संकट ने तो साम्राज्यवादियों को 1970 के दशक से उस ओर धकेला था जिसकी परिणति वर्तमान संकट है अब इस संकट के निजात 1970 के दशक के पहले वाली व्यवस्था में कैसे मिलेगा?

इसीलिए साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग वर्तमान उदारीकृत पूंजीवाद में ही कुछ कतरब्योंत कर प्रार्थना कर रहा है कि किसी तरह वर्तमान संकट से निकल जाय। वह पहले के नियंत्रित पूंजीवाद व 'कल्याणकारी' राज्य की स्थिति की ओर भी लौटने को तैयार नहीं है। मजदूर वर्ग के बड़े संघर्ष ही उसे उस ओर लौटने की ओर बाध्य करेंगे। लेकिन तब भी वह उसके पूंजी निवेश और संचय की समस्या का कोई समाधान नहीं होगा। वह अपने संकटों को और ज्यादा बढ़ाने के लिए अभिशप्त है।

वर्तमान विश्व आर्थिक संकट ने साम्राज्यवादियों के बीच आपसी मतभेदों और अंतर्विरोधों को तीखा कर दिया है। इसका सबसे तीखा असर यूरोपीय संघ पर पड़ा है। यूरोप के साम्राज्यवादी कमशः जिस यूरोपीय संघ की ओर बढ़ रहे है वह इस बुनियाद पर टिका है कि यूरोपीय संघ के विभिन्न घटक देशों के बीच विभिन्न मामलों में फर्क में कमीं आयेगी और उन्हें एक निश्चित दायरे में समेट कर रखा जायेगा। लेकिन वर्तमान तीखे संकट ने इन फर्कों को और ज्यादा तीखा कर दिया है। स्वयं सामूहिक रूप में जब कुछ मापदंडों को छोड़ने को भी इसने मजबूर किया है। बजट घाटे की बहुत कम सीमा वर्तमान संकट में छोड़ दी गयी और आर्थिक संकट से निपटने के लिए हर देश अपने–अपने हिसाब से जी तोड़ कोशिश करने लगे। यूरोपीय संघ की एकीकरण की प्रक्रिया को इस संकट ने गहरा धक्का पहुंचाया है।

स्वयं इस संकट से निपटने के सवाल पर साम्राज्यवादियों में तीखे मतभेद रहे। जहां वे इसके लिए एक मंच पर आने को मजबूर हुए वहीं उन्होंने अपने–अपने हित में इसका इस्तेमाल करने की कोशिश की। फ्रांस और जर्मनी ने जहां अमेरिकी ब्रिटिश माडल को चुनौती देने की बात की, वहीं स्वयं फ्रांस व जर्मनी में इससे निपटने पर मतभेद प्रकट हुए। सारे देश संरक्षणवाद के खिलाफ बात करते हुए भी अपनी–अपनी अर्थव्यवस्थाओं की रक्षा में लगे रहे।

स्वयं साम्राज्यवादी देशों के भीतर सबसे बुरी गत कमजोर देशों की हुयी। आइसलैण्ड, आयरलैण्ड, यूनान, स्पेन इसे सबसे ज्यादा शिकार हुए।

लेकिन इससे भी ज्यादा शिकार हुए साम्राज्यवादी दुनिया के बाहर के देश। पूर्वी यूरोप के जिन देशों को अपने शोषण के तंत्र में समेटकर वित्त पूंजी ने उभरती अर्थव्यवस्थाओं का नाम दिया था वे लगभग दिवालिया हो गये। लाटविया, लिथुवानिया से लेकर माल्दोवा तक ये सारे देश साम्राज्यवादी पूंजी की भीषण गति से रूबरू हुए। इन देशों में आर्थिक संकट ने बड़े पैमाने के राजनीतिक संकटों को भी जन्म दिया।

इस संकट ने पूर्वी एशिया से लेकर पश्चिम एशिया तक और दक्षिण अमेरिका से लेकर अफ्रीका तक उन देशों को बहुत गंभीरता से प्रभावित किया जो साम्राज्यवादी वैश्वीकरण में पहले ही बहुत तबाह हुए थे। खासकर बाद के समय में प्राथमिक मालों की कीमतों में गिरावट ने उन्हें बुरी तरह झकझोरा। यह देखते हुए कि ये देश कृषि संकट, खाद्यान्न संकट और अन्य तरह के आर्थिक–राजनीतिक संकटों से पहले ही बुरी तरह पस्त हैं, इस संकट से ढाये कहर की केवल कल्पना ही की जा सकती है।

इस संकट से निकलने के लिए सम्राज्यवादियों ने जी–8 के साथ–साथ जी–20 को भी आगे बढ़ाया। वस्तुतः वे जी–8 को नियंत्रणकारी स्थिति में रखते हुए अपने लिए जी–20 के व्यापक मंच का इस्तेमाल करना चाहते हैं। इसमें वे भारत, चीन जैसे तीसरी दुनिया की अपेक्षाकृत बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के सामने कुछ रियायत करते हुए समूची दुनिया को नियंत्रित करने की कोई स्थिति हासिल करना चाहते हैं। यह दुनिया के बदलते शक्ति संतुलन को साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप ढालने की कोशिश है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की बढ़ी हुयी भूमिका इसमें साम्राज्यवादियों के लिए मददगार होगी।

कुल मिलाकर इस संकट ने साम्राज्यवादी–पूंजीवादी दुनिया के अंतर्विरोधों को तीखे ढंग से उजागर किया है, इसने कुछ प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाया है और लम्बे समय से सतह के नीचे गतिमान कुछ चीजों को सतह पर ला दिया है। संकट जारी रहने या गहराने की अवस्था में यह और द्रुत गति से होगा।

अमेरिकी साम्राज्यवादियों के लिए यह संकट बुरे समय में आया। वे इराक और अफगानिस्तान में पहले ही फंसे हुए थे। सारी दुनिया में उनकी थू–थू हो रही थी और बाकी साम्राज्यवादी उनकी इस स्थिति से फायदा उठाने में लगे हुए थे। इस संकट ने उनकी स्थिति और खराब कर दी। यह संकट साथ ही उसे 'अमेरिकी–ब्रिटिश' माडल का, शिकागो स्कूल और वाशिंगटन कन्सेन्सस पर आधारित माडल का पूर्ण दीवालियापन लाया जिसके कारण अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने पिछले तीन दशकों में बाकी साम्राज्यवादियों पर वरीयता हासिल की थी। बाकी साम्राज्यवादी उसके माडल का अनुसरण कर रहे थे, कभी–कभी न चाहते हुए भी। अब इस संकट ने अमेरिकी साम्राज्यवादियों की इस स्थिति पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। यह इस हद तक हुआ कि मार्डन ब्राउन तक को कहना पड़ा कि वाशिंगटन कन्सेन्सस के दिन पूरे हो गये हैं।

इराक–अफगानिस्तान और वर्तमान संकट ने जार्ज बुश एण्ड कंपनी के मुंह पर इस तरह कालिख पोती कि वे लंबे समय तक इसे याद रखेंगे। अमेरिकी साम्राज्यवादियों के लिए यह जरूरी हो गया कि इन धुर दक्षिणपंथियों के 'प्रोजेक्ट फार अमेरिकी सेन्चुरी' को ठंडे बस्ते में रखकर अपना उदार चेहरा प्रकट करें और देश तथा दुनिया में अपनी गिरती साख को बचायें। उन्होंने बराक ओबामा जैसे अश्वेत व्यक्ति को ह्वाइट हाउस में बैठाकर उसकी चिकनी–चुपड़ी बातों के जरिये ऐसा करने की कोशिश की है।

लेकिन अमेरिकी सम्राज्यवादियों की हालत देश–विदेश दोनों जगह पतली हुयी है। हालांकि वर्तमान संकट में उनकी अर्थव्यवस्था में गिरावट जर्मनी जापान के मुकाबले कम रही लेकिन उनके बैंक अभी ध्वंस के

कगार पर खड़े हुए है। कोढ़ में खाज यह कि वे अपनी मुनाफे की हवस को छोड़ने को जरा भी तैयार नहीं है। वे अभी से एक नये संकट की तैयारी में लग गये हैं।

चौतरफा संकट से ग्रस्त अमेरिकी साम्राज्यवादी सारी दुनिया में मारकाट करने में लगे हुए हैं। बराक ओबामा के गले में शांति के मेडल के बावजूद वे युद्व पर बेतहाशा खर्च कर रहे हैं। लेकिन युद्व पर यह खर्च उनकी अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने में असमर्थ है। उलटे यह सब अमेरिकी सरकार के गले की चक्की बनता जा रहा है। इराक और अफगानिस्तान उसी तरह से अमेरिकी साम्राज्यवादियों के लिए मारक साबित हो रहा है जैसे वियतनाम।

अमेरिकी साम्राज्यवादी अपनी वैश्विक प्रभुत्व की स्थिति को छोड़ना नहीं चाहते जबकि उनकी वास्तविक हैसियत इस प्रभुत्व लायक रह नहीं गई है। दूसरी ओर दुनिया भी इतनी आगे बढ़ चुकी है कि इराक और अफगानिस्तान जैसी अमेरिकी साम्राज्यवादियों की परियोजनाएं स्वयं उनके लिए सबसे ज्यादा मुसिबत बनेंगी।

अमेरिकी साम्राज्यवादियों की इस बुरी गत का फायदा अन्य साम्राज्यवादियों ने उठाया है। यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने अपनी स्थिति मजबूत की है और वह भी यूरोपीय संघ के भीतरी अंतर्विरोधों के बावजूद। यहां तक कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी भी अमेरिकी साम्राज्यवादियों से अपनी दूरी बनाने और एक हद तक यूरोपीय साम्राज्यवादियों के साथ जाने को मजबूर हुए हैं। इराक युद्व के समय पुराने और नये यूरोप की बात करने वाले अमेरिकी साम्राज्यवादी पा रहे है कि 'नये यूरोप' यानी पूर्वी यूरोप पर पुराने यूरोप यानी यूरोपीय साम्राज्यादियों का प्रभाव अमेरिकियों के मुकाबले बढ़ता जा रहा है। इरान के मामले में अमेरिकी साम्राज्यवादियों को रूस से टक्कर मिली है और एक हद तक बुश ओबामा को अपमानित होकर पीछे हटना पड़ा है। उत्तरी कोरिया के मामले में अमेरिकी साम्राज्यवादियों को नये उभरते चीन से चुनौती मिली है उस चीन से जिसके शासकों की साम्राज्यवादी आकांक्षाएं जोर मार रही हैं।

अमेरिका का सापेक्षिक पराभव और बाकियों का उसके मुकाबले मजबूती हासिल करना लगातार जारी है। वर्तमान संकट में जहां डालर के वैश्विक मुद्रा होने ने अमेरिका की सापेक्षिक ताकत और लाभों को प्रदर्शित किया वहीं यह भी स्पष्ट हुआ कि इसकी दूरगामी अवनति तय है। कई वैश्विक मुद्राओं से लेकर कई वैश्विक ध्रुवों की बात अब बहुत दूर की संभावना नहीं रह गई है।

अमेरिकी साम्राज्यवादियों के मुकाबले न केवल यूरोपीय साम्राज्यवादियों बल्कि रूसी साम्राज्यवादियों और चीन के शासकों ने भी अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की कोशिश की है। वर्तमान आर्थिक संकट में हालाकि रूस भी बहुत बुरी तरह हिला खासकर रूस से विदेशी सट्टेबाजी पूंजी के पलायन और तेल की कीमतों में तेज गिरावट से, लेकिन राजनीतिक तौर पर रूसी साम्राज्यवादियों ने अपनी स्थिति मजबूत की। रूसी साम्राज्यवादियों ने पूर्व सोवियत संघ के घटक देशों में अमेरिकी साम्राज्यवादियों को चुनौती दी, पश्चिमी साम्राज्यवादियों से तेल–गैस के आधार पर तोल–मोल किया, लैटिन अमेरिका में अपने पांव पसारे और इराक, अफगानिस्तान और खासकर ईरान के मामले में अपनी साम्राज्यवादी चालें चलीं। इससे कुल मिलाकर इनकी स्थिति मजबूत हुयी। उत्तरी कोरिया के मामले में भी इन्होंने पर्याप्त सौदेबाजी की भूमिका निभाई। चीन के साथ संघाई सहकार ने इनकी इस मामले में मदद की।

लगभग दो दशक से ठहराव का शिकार जापान विश्व राजनीति में भी उसी मुद्रा में खड़ा है। इस संकट ने उसकी अर्थव्यवस्था में तीखी गिरावट को जन्म दिया। उसके पास मौजूद भारी मात्र में विदेशी मुद्रा भंडार तथा उसकी पूंजी का बाकी दुनिया में कर्ज द्वारा निवेश कोई काम नहीं आया। दो दशक के ठहराव ने उसके उत्पादक व वित्तीय निगमों को पहले के स्थान से पीछे घकेल दिया है। एक ओर जापान अमेरिकी साम्राज्यवादियों से पुराने रिश्ते बनाये रखना चाहता है वहीं दूसरी ओर वह चीन के साथ पूर्वी एशिया में ताल–मेल भी बैठा रहा है। वह सुरक्षा परिषद और वैश्विक राजनीति में अपने लिए जगह चाहता है। वह चीन को घेरने के लिए अमेरिका, आस्ट्रेलिया और भारत की मुहिम में भी शामिल है।

स्वयं चीन के पूंजीवादी शासक जहां एक ओर इस बात से बेहद खुश हैं कि उनकी अर्थव्यवस्था तेज गति से विकास कर रही है वहीं उनकी साम्राज्यवादी आकांक्षाएं जोर मार रही हैं। वे पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में अपने पांव पसार रहे हैं। वे वहां जापान को प्रतिस्थापित करना चाहते हैं। वे अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में हाथ–पांव मार रहे हैं जहां प्राकृतिक संपदा के भंडार हैं। वे इरान के मामले में अमेरिकी साम्राज्यवादियों को चुनौती दे रहे हैं और पश्चिम एशिया तथा पश्चिमोत्तर एशिया मे तेल–गैस की आपूर्ति के लिए रिश्ते कायम कर रहे हैं।

लेकिन वे आंतरिक तौर पर भीषण संकट से ग्रस्त भी हैं। इनका सबसे बड़ा संकट स्वयं तेज पूंजीवादी विकास से ही पैदा हो रहा है। किसान आबादी का कंगालीकरण, मजदूर वर्ग की लगातार गिरती स्थिति, तेज गति से बढ़ती बेरोजगारी, भयानक गति से बढ़ती क्षेत्रीय विषमता तथा समाज में बढ़ती असमानता विस्फोटक

आकार ग्रहण कर रहे हैं। तिब्बत या अन्य इलाकों में असंतोष तो इसकी अभिव्यक्ति मात्र है। तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टी का एकछत्र शासन इसमें कोढ़ में खाज की तरह ही है। यह सारी विस्फोटक सामग्री चीनी शासकों के सुनहरे सपने को बहुत तेजी से दुःस्वप्न में बदल सकती है।

साम्राज्यवादियों के आपसी अंतर्विरोध और चीन, भारत, ब्राजील जैसे तीसरी दुनिया के कुछ बड़े देशों की खींचतान विश्व व्यापार संगठन और पर्यावरण इत्यादि के मंचों पर भी अभिव्यक्त होती रही है। दोहा चक्र की वार्ताएं खिंचती जा रही हैं और साम्राज्यवादी एकमत नहीं हो पा रहे हैं। वर्तमान संकट के समय उन्हें इसकी और आवश्यकता है लेकिन ठीक इसी संकट के कारण यह और मुश्किल हो जाता है। संकट के समय साम्राज्यवादी देश अपने–अपने हितों के बचाव के लिए और ज्यादा सक्रिय हो जाते हैं। विश्व व्यापार संगठन की दोहा चक्र की वार्ताओं में भारत, ब्राजील जैसे देशों के पूंजीपति वर्ग ने अपने अलग–अलग हितों की खातिर साम्राज्यवादियों से समझौते करना और उनके सामने झुकना स्वीकार कर लिया तब भी यह वार्ता वहां नहीं पहुंच सकी कि पूरी हो जाय। साम्राज्यवादी–पूंजीवादी व्यवस्था के आम संकट के चलते हो रही खींचतान ने ही इस चक्र की वार्ता को इतना लम्बा खींचा है। इतने समय में तो उरुग्वे राउण्ड के बाद विश्व व्यापार संगठन अस्तित्व में आ गया था।

धरती के पर्यावरण जितने गंभीर मसले पर भी साम्राज्यवादी–पूंजीवादी दुनिया की यही तस्वीर उजागर हुयी। पूंजीवाद ने अपनी उत्पत्ति के समय से ही धारती के पर्यावरण का गंभीर नुकसान पहुंचाया है। उसने प्रकृति व मनुष्य के सम्बन्धों को वहां पहुंचा दिया है जहां मनुष्य और प्रकृति आमने–सामने खड़े हो गये हैं। इसके भांति–भांति के दुष्परिणाम अब एकदम स्पष्ट हैं। लेकिन इसको लेकर हुए कोपेनहेगेन शिखर सम्मेलन में साम्राज्यवादी और अन्य पूंजीवादी अपने मुनाफे की लड़ाई लड़ते रहे और नतीजा निकला धरती के पर्यावरण के विनाश का जारी रहना। केवल और केवल मुनाफे से संचालित अराजक पूंजीवादी व्यवस्था पर्यावरण को बचाने का कोई इंतजाम नहीं कर सकती। इस व्यवस्था में भूख से मरते लोगों को बचाने की सालों–साल चर्चा होगी और भूखे लोगों की संख्या बढ़ती जायगी। इसमें नशाखोरी–अपराधा रोकने की चर्चा होगी और वे बढ़ते जायेगे। इसी तरह इसमें पर्यावरण बचाने की चर्चा होगी पर्यावरण नष्ट होता जायगा। कोपेनहेगेन में अमेरिकी साम्राज्यवादी भी जुबानी जमाखर्च करते हुए शेर बनते रहे। पिछड़े देशों के पूंजीपति भी अपनी सामर्थ्य के हिसाब से पर्यावरण को नष्ट करने में लगे हुए हैं। वे अपना यह अधिकार क्यों छोड़े दें? दूसरी ओर साम्राज्यवादी चाहते हैं कि पर्यावरण बचाने के मामले को भी मुनाफे का एक स्रोत (विकसित तकनीक बेचने इत्यादि) तथा तीसरी दुनिया के देशों पर वर्चस्व कायम करने का एक साधान बना लिया जाय। साम्राज्यवाद के युग में पर्यावरण के मुद्दे पर पूंजीपति वर्ग की सारी चिल्लपों का यही हश्र होता रहेगा।

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के दौर में वित्तपूंजी ने सबसे ज्यादा तबाही लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के देशों में ढाई थी। इन सबके लिए 1980 व 1990 का दशक तबाही का ही दशक रहा है। 1980 के दशक को तो आधिकारिक तौर पर खो दिया गया दशक घोषित कर दिया गया था।

वर्तमान दशक में लैटिन अमेरिका के देशों में साम्राज्यवादी वैश्वीकरण की नीतियों के खिलाफ प्रतिक्रिया जारी है। यहां एक के बाद दूसरे देशों में अपने को वामपंथी या समाजवादी कहने वालों का सत्तासीन होना जारी है। अब यह संख्या काफी बढ़ चुकी है। लेकिन बीते समय ने इनके असली चरित्र को भी उजागर किया है। न केवल लूला डी सिल्वा बल्कि ह्यूगो शावेज भी अपने चमक खोते जा रहे हैं। शावेज के नजदीकी लोगों में बड़े पैमाने के भ्रष्टाचार ने उनके 'इक्कीसवीं सदी के समाजवाद' की पर्याप्त कलई खोली है। क्यूबा की नकल करने से लेकर यूरोप की पतित सामाजिक जनवादी पार्टियों की नकल करने तक की सारी किस्में वहां मौजूद हैं। निकारागुआ के डेनियल ओर्टेगा तो अकेले ही अपनी जीवन यात्रा में इन सबको समेटते हैं। उग्र अमेरिकी साम्राज्यवाद विरोध से लेकर आज उसके साथ ताल–मेल बैठाकर सत्तासीन होने तक उन्होंने समूची यात्रा तय कर ली है। आज ह्यूगो शावेज डेनियल आर्टेगा के अतीत का स्वांग कर रहे हैं तो अपना वर्तमान आर्टेगा स्वयं हैं।

ये सारी सरकारें अपने देशों में एक काम कर रही हैं–कम या ज्यादा मात्र में जनता को राहत पहुंचाने का। कहीं–कहीं तो यह राहत भी केवल प्रचार मात्र हैं। इसमें अमेरिकी साम्राज्यवाद विरोध का कम या ज्यादा दिखावा भी है। पूरे महाद्वीप में वामपंथ और समाजवाद के शोर–शराबे के बावजूद वहां सम्पत्ति सम्बन्धों में कोई बदलाव नहीं है। यहां तक कि क्यूबा के संशोधनवादियों को भी कहना पड़ा कि लैटिन अमेरिका में कोई भी सरकार व्यवस्था नहीं बदल रही है और केवल घोषणा कर देने मात्र से समाजवाद नहीं कायम हो जायगा।

साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के वर्तमान संकट को देखते हुए स्वयं साम्राज्यवादियों को यह स्वीकार है। बुर्जुआ सुधारवाद की यह किस्म उनके लिए कोई पराई नहीं है। आखिर यह उनके सामाजिक जनवाद की ही एक किस्म है।

ज्यादातर अफ्रीकी देशों को यह भी नसीब नहीं है। ज्यादातर अफ्रीकी देश आंतरिक और बाह्य विग्रह के शिकार हैं। इस साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के युग में उनकी त्रासदी है कि वे प्राकृतिक संसाधानों के मालिक हैं। साम्राज्यवादी इन प्राकृतिक संसाधानों को उनके हाथों में नहीं छोड़ सकते। यहां तक कि चीन जैसे उभरते पूंजीवादी देश के शासक भी नहीं। आज जबकि देशों को उपनिवेश बनाकर उनके प्राकृतिक संसाधानों पर कब्जा करना संभव नहीं रह गया है तब इसके लिए भांति–भांति के तरीके अपनाए जा रहे है। देशों के भीतर नस्ली, जातीय, साम्प्रदायिक या क्षेत्रीय विग्रह फैलाकर फिर वहां हस्तक्षेप करना तथा अपनी जड़ें जमा लेना इसमें से एक है।

समूचा अफ्रीकी महाद्वीप औपनिवेशिक अतीत और फिर शीत युद्व के जमाने में फैलाये गये विग्रहों के साथ–साथ वर्तमान में फैलाये जा रहे विग्रहों का शिकार है। यहां प्रति वर्ष लाखों लोग युद्व में मारे जा रहे हैं और उससे ज्यादा युद्व द्वारा फैलाई गयी तबाही से। सोमालिया, दारफुर से लेकर दक्षिण अफ्रीका तक यही हो रहा है। जिम्बाम्बे में शासक राबर्ट मोगाबे तथा साम्राज्यवादियों की चालों के बीच पिसती मजदूर–मेहनतकश आबादी इसकी एक बानगी ही है।

इन देशों का शासक पूंजीपति वर्ग साम्राज्यवादियों के साथ सौदा कर फल–फूल रहा है जबकि मजदूर–मेहनतकश आबादी भूखों मर रही है। यदि वह युद्व से बच गई तो उसका भूखमरी के फंदे में फंसना तय है। इस बीच इसकी प्राकृतिक संपदा और प्राथमिक मालों को अत्यंत सस्ते में पाकर साम्राज्यवादी मालामाल हो रहे हैं।

इराक में अमेरिकी साम्राज्यवादियों की सारी कोशिशों के बावजूद उनकी कठपुतली सरकार के नेतृत्व में शांति स्थापित नहीं हो रही है और समूचा पश्चिम एशिया विस्फोटक बना हुआ है। बल्कि वर्तमान आर्थिक संकट ने कुछ समृद्व देशों की समृद्वि के आवरण को हटा कर उन्हें तीखे संकट में ढकेल दिया है और इस तरह समूचे क्षेत्र की अस्थिरता को और बढ़ा दिया है।

बराक ओबामा ने सत्तासीन होते ही घोषणा की कि वे इराक से सेनाएं हटा लेंगे और अलकायदा से लड़ने के लिए सारा ध्यान अफगानिस्तान पर कन्द्रित करेंगे। वास्तव में यह अमेरिकी साम्राज्यवादियों की नयी चाल थी। वे बेहद विस्फोटक हो चले इराक में कुछ शांति चाहते थे और दूसरी ओर अफगानिस्तान–पाकिस्तान में अपनी मजबूती के जरिये पश्चिमोत्तर एशिया में दखल। गाहे–बगाहे अमेरिकी साम्राज्यवादी हलकों से बातें आती रहती हैं कि इराक से स्थाई तौर पर हटने का उनका कोई इरादा नहीं है। यही सच भी है। केवल पूर्ण पराजय ही उन्हें वहां से हटने को बाध्य करेगी। इराकी जनता इसी ओर बढ़ भी रही है।

बराक ओबामा के चेहरे की नकली मुस्कान का सबसे ज्यादा भंडाफोड़ फिलिस्तीन करता है। इस्राइली शासक वहां बेखौफ होकर पहले की तरह ही अपनी उत्पीड़क नीतियां जारी रखे हुए हैं। बराक ओबामा दूसरे और नजरें फेरकर उन्हें शह दे रहे हैं। अमेरिकी साम्राज्यवादी यही करेंगे भी। पश्चिम एशिया में इस्राइल को हर कीमत पर संरक्षण उनकी साम्राज्यवादी जरूरत है।

लेकिन ठीक इसी कारण समूचे पश्चिम एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवादियों के खिलाफ नफरत लगातार बढ़ती जा रही है। इसके साथ खड़े शासकों के सिंहासन डांवांडोल हो रहे हैं। समूचे क्षेत्र की जनता तीव्र क्रोध से उबल रही है। जिन मुस्लिम कट्टरपंथियों के खिलाफ लड़ने का अमेरिकी साम्राज्यवादी दावा करते हैं, उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

दक्षिण एशिया भी विश्व के उथल–पुथल वाले क्षेत्रों में से एक है। इस क्षेत्र के सारे देश पिछले सालों में गंभीर उथी–पुथल के शिकार रहे है। श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान सभी इसमें शामिल हैं। श्रीलंका में पूंजीवादी शासकों ने तमिल जनता के खिलाफ वहशियाना युद्व चलाकर उसका कत्लेआम किया। वह लिट्टे को पराजित कर उसका सफाया करने में कामयाब रहा। साम्राज्यवादियों सहित आस–पास के देशों के शासकों ने अपने–अपने हितों के तहत श्रीलंकाई शासकों के इस कुकृत्य का समर्थन किया और उसमें सहयोग दिया। आज भी लाखों तमिल जनता सेना के घेरे में कैपों में बन्द है। श्रीलंकाई शासकों की इस सफलता से सारे शासकों के अपनी जनता पर अत्याचार करने के लिए हौसले बुलंद हुए हैं।

पाकिस्तान के पूंजीवादी शासकों का इसके उलट हाल हुआ है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ सांठ–गांठ की कीमत उन्हें इस रूप में चुकानी पड़ रही हे कि आज पाकिस्तान के अस्तित्व के लिए ही खतरा पैदा हो गया है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा अफगानिस्तान में लड़ा जा रहा युद्व अब पाकिस्तान में भी प्रवेश कर गया है। वस्तुतः अमेरिकी सेनाएं पाकिस्तानी क्षेत्रों में हमले कर रही हैं। अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा अफगानिस्तान पर हमले और पाकिस्तानी शासकों की उससे सांठ–गांठ ने पाकिस्तानी समाज में मुस्लिम कट्टरपंथियों की ताकत बहुत मजबूत कर दी है। मुशर्रफ को विदा कर आपादमस्तक भ्रष्ट जरदारी को गद्दी पर बैठाना पाकिस्तानी शासकों के लिए कोई कारगर साबित नहीं हुआ।

बांग्लादेश में दो सालों के सैनिक शासन के बाद चुनाव हुए और शेख हसीना वाजेद की अवामी लीग सत्ता में आई। लेकिन इस ऊपरी परिवर्तन के बावजूद भीतरी हालातों को खुलासा तब हुआ बांग्लादेश राइफल्स के जवानों ने विद्रोह कर दिया और अपने अफसरों को, जो सेना से आये हुए थे, मार डाला। भयंकर गरीबी से त्रस्त बांग्लादेश साम्राज्यवादी पूंजी का चारागाह बना हुआ है औरा पिछले सालों में अमेरिकी साम्राज्यवादियों की घुसपैठ यहां बढ़ी है। बांग्ला देशी शासकों ने भारतीय शासकों की छाया से भी निकलने की कोशिश की है।

नेपाल में 2008 के मध्य में संविधान सभा के चुनावों के बाद गठित नयी संविधाान सभा ने राजशाही के खात्मे की औपचारिक घोषणा करके नेपाल को एक लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित कर दिया। इसने लोकतांत्रिक गणराज्य के संविधाान निर्माण की प्रक्रिया को भी शुरू किया। लेकिन क्रांतिकारी शक्तियों और बुर्जुआ शक्तियों के बीच नेपाल के भविष्य को लेकर संघर्ष जारी रहा। बुर्जुआ शक्तियां भारतीय विस्तारवादियों और साम्राज्यवादियों के साथ मिलकर पूरा जोर लगा रही है कि क्रांतिकारी शक्तियों को अलगाव में डालकर नेपाल में बदलाव की पूरी प्रक्रिया को बुर्जुआ जनवाद तक सीमित कर दिया जाय। इसे वर्तमान घोषित लोकतांत्रिक गणराज्य तक सीमित कर दिया। जबकि क्रांतिकारी शक्तियां इस बात के लिए संघर्षरत है कि बदलाव की समूची प्रक्रिया को आगे ले जाया जाय, लोकतांत्रिक गणराज्य से आगे जनता के जनवादी राज्य तक जाया जाय। निश्चय ही यह बुर्जुआ शक्तियों को पराजित किये बिना और उन्हें किनारे लगाये बिना नहीं किया जा सकता। क्रांतिकारी शक्तियां इसे फिलहाल शांतिपूर्ण तरीके से आगे बढ़ाने का प्रयास कर रही हैं लेकिन अंततः इसे फिर हिंसा का रास्ता अख्तियार करना ही होगा। जनता का जनवादी राज्य समाजवाद का पूर्वाधार होगा और वह शांति पूर्ण तरीकों से, बुर्जुआ शक्तियों के साथ समझौते से हासिल नहीं किया जा सकता।

नेपाल की क्रांति से भयभीत होकर भूटान के शासकों ने उसे संवैधाानिक राजतंत्र घोषित कर दिया। इसके तहत एक फर्जी चुनाव भी करा दिये गये। लेकिन भारतीय शासकों के चाहने के बावजूद भूटान बहुत समय तक इस फर्जी संवैधाानिक राजतंत्र की स्थिति में नहीं बना रहेगा। वहां भी बदलाव की प्रक्रिया आगे जायेगी।

दक्षिण एशिया के सबसे बड़े और प्रभावशाली देश भारत की चर्चा अगले हिस्से में की जायगी। यहां केवल इतना ही रेखांकित करना होगा कि भारत भी पिछले सालों में पर्याप्त उथल–पुथल से गुजरा है।

आज समूची दुनिया में ही शासक चैन से शासन नहीं कर पा रहे हैं। दुनिया में ऐसे पचासों देश हैं जहां के शासक अपने देश के भीतर राज्य के खिलाफ हिंसक संघर्ष पर काबू नहीं कर पा रहे हैं। पूंजीवादी शासन में हिंसा पर राज्य का एकाधिकार होता है लेकिन राज्य इस एकाधिकार को बनाए नहीं रख पा रहा है। साम्राज्यवादी अपनी अकूत सैनिक क्षमता के बावजूद छोटे–छोटे देशों पर कब्जा नहीं जमा पा रहे हैं। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, इराक और फिलिस्तीन अपने आप में समूची विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में शासक वर्गों की वास्तविक हालत का दर्पण हैं।

किसी भी शासक वर्ग के शासन की दीर्घायु के लिए जरूरी है कि शासित लोग स्वयं उस शासन को स्वीकार करें। उस शासन में उनका जीवन ऐसा हो कि थोड़े–बहुत असंतोष के बावजूद शासितों का व्यापक हिस्सा उसे स्वीकार करता रहे। इसके लिए यह भी जरूरी है शासक वर्ग शासितों के जीवन यापन की एक न्यूनतम स्थिति सुनिश्चित करे। यदि ऐसा नहीं होता है, यदि व्यापक शासित जनता गहरे असंतोष का शिकार होती है, यदि प्रतिरोध और विद्रोह का सिलसिला आरंभ हो जाता है तो शासक वर्ग के दिन गिने–चुने रह जाते हैं।

आज विश्व पूंजीवादी व्यवस्था की यह सच्चाई है कि इसके शासकों को एक से एक प्रतिरोधों, संघर्षों और विद्रोहों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें से कई स्वस्थ है तो कई विकृत। लेकिन ये कुल मिलाकर शासको को चैन से नहीं बैठने दे रहे हैं। यदि दुनिया के सबसे बड़े शासक अमेरिकी साम्राज्यवादी इराक और अफगानिस्तान में मुंह की खा रहे हैं तो बहुत सारे पिछड़े देशों के शासक अपने घर में ही।

समूची विश्व पूंजीवादी व्यवस्था आज न केवल ज्यादातर लोगों को एक ढंग का जीवन दे पाने में असमर्थ है बल्कि वह इनकी हालत को और ज्यादा बदतर बनाकर ही अपने जीवन को लम्बा खींच पा रही है। लोगों का भूखों मरना पूंजीपति वर्ग के मुनाफे के बढ़ाने की शर्त है। यह अकारण और असंबद्ध नहीं है कि जब सट्टेबाजी में अरबों–खरबों डालर चुटकियों में इधार से उधार किये जा रहे हैं तब भूख से मरते लोगो को बचाने के लिए कुछ करोड़ डालर नहीं हैं। इराक पर कब्जा करने के लिए और इस प्रक्रिया में उसे तबाह करने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवादी दो–तीन हजार अरब डालर खर्च कर सकते हैं लेकिन इराक के पुनर्निर्माण पर वे दो–तीन अरब डालर भी खर्च नहीं करेंगे। वे जितना भी खर्च करेंगे उसका दस गुना इराकी तेल बेच कर हासिल कर लेंगे। आखिर इराकी लोगों की चिंतो से तो उन्होंने इराक पर कब्जा नहीं किया था।

साम्राज्यवाद–पूंजीवाद के अंतर्विरोधों क विकराल होते जाने के साथ इसके खिलाफ भांति–भांति के संघर्ष फूट रहे हैं। इसमें इराक, अफगानिस्तान, फिलिस्तिन के संघर्ष है तो नेपाल, भूटान, फिलिपीन्स के संघर्ष भी। इसमें कोलंबिया का संघर्ष है तो स्पेन का भी। इसमें यूनान के छात्र शामिल है तो इटली के मजदूर भी। इसमें ब्राजील के छोटे किसान है तो अफ्रीका के आदिवासी भी।

वर्तमान संकट के पिछले तीन सालो में यह संघर्ष और ज्यादा तेज हुआ है। इसमें नयी जान पड़ी है। साम्राज्यवादी–पूंजीवादी शासकों की नींद और ज्यादा हराम हुयी है। एक बार फिर शासक वर्गीय हलकों में समाजवाद, मार्क्सवाद की चर्चा होने लगी है।

वर्तमान संकट और इसके तीव्र अंतर्विरोधो ने मजदूर और अन्य मेहनतकश जनता के वर्गीय संघर्षों को एक बार फिर केन्द्र में ला दिया है। पिछले कुछ दशकों से शासक वर्गों द्वारा फैलाया जा रहा नये सामाजिक आंदोलन का धुम्रावरण कमजोर पड़ा है। विश्व सामाजिक मंच की चमक तथाकथित नये सामाजिक आंदोलन को प्रोत्साहित करना जारी रखेंगे जिससे वे उभरते वर्गीय संघर्षों को बाधित कर सकें। समाज में इनकी पहले से मजबूत मौजूदगी इसमें शासकों की मदद करेगी। लेकिन वर्गीय संघर्ष तीखे होने पर वर्ग संघर्ष की आंधी इन्हें घास–फूस की तरह उड़ा देगी।

वर्तमान संकट भले ही निकट भविष्य में हल्का जड़ जाय लेकिन आने वाले समय में मजदूर–मेहनतकश जनता के संघर्ष नहीं हल्के पड़ने वाले। आने वाले समय में इसमें तेजी आयेगी। साम्राज्यवाद–पूंजीवाद के अंतर्विरोध इसे इसी दिशा में धकेल रहे हैं।

राष्ट्रीय परिस्थिति

अमेरिकी साम्राज्यवादियों से सटकर वैश्विक शक्ति के सपने में खोये भारत के पूंजीपति वर्ग पर भी वैश्विक आर्थिक संकट की छाया पड़ी। पहले तो कुछ साम्राज्यवादियों द्वारा प्रचारित इस मिथक को भारतीय पूंजीपतियों ने भी जोर–शोर से दुहराया कि भारत–चीन जैसे देशों की अर्थव्यवस्थाएं साम्राज्यवादी देशों द्वारा नियंत्रित वैश्विक अर्थव्यवस्था से 'डिकपल्ड' हो गई है, कि इनमें तेज विकास जारी रहेगा, कि ये वैश्विक अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करेंगी लेकिन जल्दी ही इनकी बोलती बन्द हो गई और इनकी भी सांसे थमने लगीं। जनवरी 2008 में 20,000 से ऊपर जाने वाला सेनसेक्स नवम्बर 2008 में लुढ़ककर 8000 से भी नीचे चला गया।

दरअसल भारत का पूंजीपति वर्ग 2003 से 2007 तक की अपनी ऊंची विकास दर से बहुत खुश था। वह इतना खुश था कि 10 प्रतिशत सालाना वृद्वि दर की बात करने लगा था। यही नहीं, वह यह भी कहने लगा था कि चीन की अर्थव्यवस्था बहुत सारे अंतर्विरोधों से ग्रस्त है इसीलिये वह जल्दी ही चीन को पछाड़ देगा।

इसके बाद आया 2007 का उत्तरार्ध। साम्राज्यवादी देशों में वित्तीय संकट गहराने लगा और वहां की सटोरिया पूंजी निवेश अैर मुनाफे की बेहतर जगहों की तलाश में भारत आने लगी। उसकी आमद ने यहां के शेयर बाजार में भारी उछाल को जन्म दिया जिसने अपनी बारी में खुशफहमी को जन्म देकर और भी ज्यादा विदेशी निवेश को आकर्षित किया। शेयर बाजार छलांगे लगाता हुआ बीस हजार (सेनसेक्स) को पार कर गया।

वित्तीय कारोबार और सट्टेबाजी की प्रधानता के जमाने में भारत में विदेशी सटोरिया पूंजी की इस आमद और इसके जरिये पैदा शेयर बाजार में उछाल ने सटोरिये साम्राज्यवादियों के बीच 'डिकपलिंग' की धारणा को

जन्म दिया। वे अपने द्वारा ही तीन दशकों से प्रचारित वैश्विक एकीकरण को भूल गये। वे भूल गये कि एकीकृत वैश्विक अर्थव्यवस्था के इस जमाने में इस तरह की डीकपलिंग नहीं हो सकती कि बाकी दुनिया की अर्थव्यवस्था तो रसातल में जाय लेकिन कुछ देश इससे अछूते आगे बढ़ते रहें। लेकिन संकट के समय कोई भी खुशफहमी फायदेमंद होती है, चाहे वह कितनी क्षणिक हो। इसीलिए साम्राज्यवादियों ने इसे प्रचारित किया और दुनिया में अपनी हैसियत को बढ़ाने के लिए हरचंद कोशिश करते भारत के पूंजीपति वर्ग ने इसे लपक लिया।

असल में बात उलटी थी। यहां का मामला 'डीकपलिंग' का नहीं बल्कि 'कपलिंग' के जरिये पैदा होने वाली भांति–भांति की गतियों का था। 2007 के उत्तरार्ध में भारत का शेयर बाजार कुलांचें भरने लगा तो ठीक इसी कारण कि साम्राज्यवादी दुनिया में गंभीर वित्तीय संकट शुरू हो गया था और वहां की सटोरिया पूंजी फिलहाल ठीक–ठाक चल रहे बाजारों की ओर रुख कर रही थी। यह वित्त पूंजी के नेतृत्व में साम्राज्यवादी एकीकरण का ही परिणाम था।

दुनिया के वित्त बाजार के इसी एकीकरण के चलते 2008 में जनवरी के बाद भारत का शेयर बाजार लुढ़कने लगा और वह नवंबर में न्यूनतम पर जा पहुंचा। जहां वित्तीय संकट की शुरुआत में साम्राज्यवादी देशों से सटोरिया पूंजी बेहतर निवेश की तलाश में भारत आयी और यहां शेयर बाजार में उछाल को जन्म दिया वहीं संकट गहराने पर वह फिर साम्राज्यवादी देशों की ओर पलायन करने लगी। सटोरिया निवेशकों को साम्राज्यवादी देशों में अपनी देनदारियों का गंभीर खतरा पैदा हो गया और वे सभी जगह से पूंजी खींच कर वापस ले जाने लगे। उनके इस पूंजी निवेश को बाहर ले जाने से भारत का शेयर बाजार लुढ़कने लगा। और इसी के साथ 'डिकपलिंग' का तथाकथित सिद्धान्त भी लुढ़कने लगा।

वस्तुतः भारत के शेयर बाजार में यह उठा–पटक विश्व वित्तीय बाजार से संकट के दो चरणों का परिणाम था। जब पहले संकट की शुरुआत हुयी तो उसने एक परिणाम पैदा किया और जब संकट गहरा गया तो दूसरा परिणाम। स्वयं अमेरिका में यह पहले डालर के कमजोर होने, फिर मजबूत होने और अंततः 2009 में फिर कमजोर होने में अभिव्यक्त हुआ।

भारत के शेयर बाजार में 2007 में कुल 17 अरब डालर की विदेशी पूंजी आई थी इसका ज्यादातर हिस्सा 2007 के उत्तरार्ध में आया था। इसके मुकाबले 2008 में कुल करीब 10 अरब डालर विदेशी पूंजी बाहर गई। इसी आमद और पलायन ने भारत के शेयर बाजार के सारे उठा–पटक को जन्म दिया।

प्रसंगवश, यह उठा–पटक भारत के शेयर बाजार के उथलेपन को दिखाती है। 17 या 10 अरब डालर की पूंजी भारतीय कंपनियों की पूंजी या शेयर बाजार में लगी कुल पूंजी क मुकाबले कुछ भी नहीं है। लेकिन यह थोड़ी सी पूंजी भी भारत के शेयर बाजार में बड़े उथल–पुथल को जन्म दे देती है। भारतीय शेयर बाजार में थोड़े से बड़े खिलाड़ी वह भी प्रमुखतः विदेशी खिलाड़ी उसकी गति को तय करते हैं। और इसी पर भारत का पूंजीपति वर्ग इतराता है और गाहे–बगाहे 'डिकपलिंग' जैसी बकवास को सिर माथे चढ़ाता है।

2009 में दुनिया के वित्त बाजार में हलचल के थोड़ा थमने पर सटोरिया पूंजी ने एक बार फिर भारत की ओर रुख किया और अक्टूबर तक करीब 15 अरब डालर की विदेशी पूंजी की आमद से शेयर बाजार फिर 17000 (सेनसेक्स) के ऊपर चला गया। विदेशी सटोरिया पूंजी भारत के शेयर बाजार को नचा रही है और वह नाच रहा है। इसके साथ ही भारत का पूंजीपति कूल्हे मटका रहा है।

शेयर बाजार से इतर वास्तविक उत्पादन और वितरण पर भी विश्व आर्थिक संकट का असर पड़ना था और पड़ा। खासकर इसका आयात निर्यात बुरी तरह प्रभावित हुआ। 1991 में निजीकरण–उदारीकरण–वैश्वीकरण की नीतियों को धाडल्ले से लागू करने के पहले भारत का कुल आयात–निर्यात सकल घरेलू उत्पाद का करीब 15 प्रतिशत था। नयी नीतियो का एक घोषित उद्देश्य था आयात–निर्यात को बढ़ाना। इसके चलते विश्व व्यापार में तो भारत का हिस्सा बहुत ज्यादा नहीं बढ़ा (यह अभी भी करीब 1 प्रतिशत है) लेकिन भारत के सकल घरेलू उत्पाद के मुकाबले यह बढ़कर 35 प्रतिशत तक पहुंच गया। यह वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था में भारत के एकीकरण का परिणाम था।

भारत के विदेशी व्यापार की इस बढ़ी हुयी स्थिति में विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में गंभीर संकट आने पर इसका भारत पर प्रभाव पड़ना ही था। जब 2008 में दुनिया की अर्थव्यवस्थाएं सिकुड़नी शुरू हुयी तो भारत का आयात–निर्यात तेजी से गिरने लगा। सितंबर 2008 से अक्टूबर 2009 तक भारत का निर्यात लगातार नकारात्मक वृद्वि यानी गिरावट का शिकार रहा। यह गिरावट भी मामूली नहीं थी। यह 25–30 प्रतिशत तक पहुंची। यही हाल आयात का भी रहा। इसमें भी लगातार गिरावट रही। चूंकि भारत का निर्यात आयात के मुकाबले तेज गति से गिरा इसलिए पहले ही काफी ऊंचे स्तर पर पहुंचा व्यापार घाटा और ज्यादा हो गया। जिस विदेशी मुद्रा भंडार की सरकार डींग हांका करती थी वह बढ़ते व्यापार घाटे, विदेशी पूंजी के पलायन, विदेशी देनदारियों

(भारतीय कंपनियों द्वारा लिए गये विदेशी कर्जों पर) और विदेशों में रोजगार की कमी के चलते तेजी से गिरने लगा। भारत सरकार की विदेशी मुद्रा भंडार के मामले में आश्वस्ति हवा हो गयी।

निर्यात में कमी का सीधा असर भारत के निर्यात उद्योग पर पड़ा। इसकी निर्यातक इकाईयां धड़ाधड़ बन्द होने लगी या उन्होंने अपना उत्पादन कम कर दिया। बीसियों लाख मजदूर बेरोजगार हो गये। इसके चलते औद्योगिक उत्पादन में भी तेजी से गिरावट आई।

वास्तव में वैश्विक संकट के गहराने पर भारत के समूचे औद्योगिक उत्पादन पर असर पड़ा। उसमें गिरावट आई। विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रें में अंतर्विरोधों के चलते यह और घनीभूत हुआ।

सेवा क्षेत्र पर भी विश्व संकट का गहरा असर पड़ा। पिछले सालों में सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित सेवाओं का निर्यात बड़े पैमाने पर बढ़ा है। वस्तुतः यह विदेशी मुद्रा कमाने वाले सबसे बड़े क्षेत्रें में हो गया है। जब साम्राज्यवादी देशों, खासकर अमेरिका में संकट घनीभूत हुआ तो इस सेवा के निर्यात पर प्रभाव पड़ा। अन्य सेवाएं भी संकट से प्रभावित हुयीं।

इस तरह कुल मिलाकर भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर विश्व आर्थिक संकट का प्रभाव पड़ा और इसकी विकास दर गिर गई। 10 प्रतिशत की विकास दर तक पहुंचने का ख्वाब देखने वाले पूंजीपति वर्ग को 5 प्रतिशत तक गिरने का भय सताने लगा।

जैसा कि पहले कहा गया है इस संकट के दौरान भारत का विदेशी मुद्रा भंडार बुरी तरह प्रभावित हुआ है। 1990–91 में गंभीर भुगतान संतुलन के संकट से गुजरने के बाद भारत के पूंजीपति वर्ग को फिर ऐसे संकट से दो–चार नहीं होना पड़ा। यही नहीं, इस दशक की शुरुआत से विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्वि से उसके अंदर आश्वस्ति का भाव भी पैदा होने लगा। जब यह भंडार 300 अरब डालर के पार पहुंच गया तो भारत सरकार की खुशी का पारावार नहीं रहा। उसे लगा कि उसने सदा सर्वदा के लिए भुगतान संतुलन के संकट से मुक्ति पा ली है।

लेकिन इस संकट ने दिखाया कि जिस वैश्विक एकीकरण ने यह बड़ा विदेशी मुद्रा भंडार खड़ा किया है वही इसे निगल भी लेगा। संकट आते ही विदेशी मुद्रा की आमद के सारे स्रोत सूख गये। विदेशी पूंजी निवेश होने के बदले वह यहां से पलायन करने लगी, भारतीय कंपनियां और बैंक विदेशों से पूंजी उगाहने (जीडीआर के जरिये)के बदले देनदारियां चुकाने में लग गये, व्यापार घाटा बढ़ने से विदेशी मुद्रा भंडार पर दबाव बढ़ गया, सेवा क्षेत्र में निर्यात में गिरावट से वह स्रोत भी सूखने लगा, यही नहीं विदेशों में यहां से काम पर जाने वालों की संख्या भी घटने लगी और उनके द्वारा देश भेजे जाने वाली विदेशी मुद्रा में भी कमी आ गई। इससे भी बुरा यह कि ऐसे कठिन समय में छोटी अवधि के ऋण के स्रोत सूख जाते हैं और ऐसे ऋण दाता अपने कर्जे खींच लेते हैं। नया कर्जा मिलना तो और भी मुश्किल हो जाता है।

भारत का विदेशी मुद्रा भंडार भी इसी के चलते तेजी से गिरा और इसने भारत सरकार के सामने चिंता की स्थिति पैदा कर दी। इसने दिखाया कि संकट की और चुनौतीपूर्ण स्थितियो में, खासकर रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की स्थिति में जब रुपये के अवमूल्यन को रोका नहीं जा सकता, विदेशी मुद्रा के मामले में यह आश्वस्ति छलावा ही साबित होगी। भारत के पूंजीपति वर्ग ने वैश्विक पूंजीवाद से जो एकीकरण किया है उसे उसकी कीमत चुकानी होगी, यह अलग बात है कि मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता उससे भी ज्यादा कीमत चुकायेगी।

यदि भारत पर विश्व आर्थिक संकट का अपेक्षाकृत कम असर पड़ा तो इसी कारण कि विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भारत का एकीकरण अभी कम हुआ है। अभी भी उसके विश्व व्यापार का हिस्सा दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद में उसके हिस्से से काफी कम है। इससे भी बड़ी बात यह है कि रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता नहीं है। इससे सटोरिया पूंजी के मुक्त आवागमन में कुछ बाधा है। भारत के वित्तीय संस्थान भी विदेशी पूंजी निवेश से उतने सराबोर नहीं है और दुनिया के कारोबार में उतने लिप्त नहीं हैं। भारतीय वित्तीय तंत्र पर अभी भी भांति–भांति का नियंत्रण है। इसी के चलते मुनाफा कमाने के सारे दबाव के बावजूद सब प्राइम बाजार में भारतीय वित्तीय संस्थानों का निवेश बहुत कम था।

भारत का पूंजीपति वर्ग और उसकी सरकार तात्कालिक मुनाफे के लालच में ठीक इन्हीं स्थितियों को समाप्त करना चाहती है, वह पूंजी के आवागमन पर हर बाधा को समाप्त करना चाहती है, वह वित्तीय संस्थानों पर नियंत्रण को समाप्त करना, वह देश में सट्टेबाजी को बढ़ाना चाहती है, वह विश्व सट्टेबाजी की दुनिया से भारत को जोड़ना चाहती है। वह 'पूर्ण कुशल' वित्तीय बाजार चाहती है, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका व इंग्लैण्ड में हैं। यदि उसकी आकांक्षा पूरी हो जाती है तो भारतीय अर्थव्यवस्था भविष्य के संकटों में वैसे ही हिचकोले खायेगी जैसे पूर्वी यूरोप की अर्थव्यवस्थाओं ने इस बार हिचकोले खाये।

2008–09 में गिरावट के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ सुधार के संकेत दीख रहे हैं, हालांकि 2007 वाली स्थिति अभी कहीं नहीं है। भारत का पूंजीपति वर्ग एक बार फिर सपने पालने लगा है।

लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था के दूरगामी अंतर्विरोध लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं। सेवा क्षेत्र कुलांचे भर रहा है लेकिन खेती लगातार पिछड़ती जा रही है, वह खेती जिस पर आधे से ज्यादा आबादी निर्भर है। सूखा या बाढ़ की कोई भी स्थिति खेती में उत्पादन को बहुत बुरी तरह प्रभावित कर देती है।

सबसे गंभीर बात है खेती का अर्थव्यवस्था में महत्व घटते जाना लेकिन उस पर निर्भर आबादी का कम न होना। विकसित साम्राज्यवादी देशों में कृषि का अर्थव्यवस्था में हिस्सा 2–4 प्रतिशत ही है लेकिन तब खेती में लगी आबादी भी इसी अनुपात में है। भारत में जहां खेती का सकल घरेलू उत्त्पाद में हिस्सा घटकर 18 प्रतिशत तक आ गया है वहीं आबादी का 50 प्रतिशत हिस्सा उस पर निर्भर है। यह देहातों में भीषण कंगाली को जन्म दे रहा है।

गावों में पीढ़ी दर पीढ़ी विभाजन से प्रति व्यक्ति रकबा कम होता जा रहा है। खेती में मशीनीकरण से वहां श्रम शक्ति की जरूरत कम होती जा रही है, छोटे–मझोले किसानों के तबाह होने की घटनाएं बढ़ रही हैं लेकिन इस उजरती या फालतू आबादी के लिए खेती से इतर रोजगार की संभावनाएं नहीं पैदा हो रही हैं। देहातों में और रोजगार नहीं पैदा हो रहे हैं, शहरों में उद्योगों में सारा विकास श्रम सघन के बदले पूंजी सघन है। यही बात सेवा क्षेत्र में भी है। यहां भी कम्प्यूटरीकरण और संचार क्रांति तथा ऑटोमेशन के चलते श्रम शक्ति की मांग बहुत कम है। साम्राज्यवादी देशों में उनके पूंजीवादी विकास के प्रारंभिक चरणों में देहातों से उजरती आबादी को शहरों में उद्योग व सेवा क्षेत्र में खपाया था। एक भारी आबादी इन क्षेपत्रों से बाहर उपनिवेशों में जा बसी थी। भारत जैसे देश को यह सुविधा प्राप्त नहीं है। ऐसे में देहातों से उजड़ने वाली इसकी भारी आबादी वहीं पड़े रह कर अधिकाधिक कंगाली में जीने को अभिशप्त है। देहातों में शासकों द्वारा नरेगा जैसी योजनाओं की जड़ में यही यथार्थ है। नरेगा जैसी योजनाओं से वे इस कंगाल आबादी के असंतोष को कुछ कम करना चाहते हैं और उसे देहातों में उलझाए रखना चाहते हैं। जिससे शहरों में विस्फोटक स्थिति न पैदा हो। यह देहाती पूंजीपतियों को मजदूर भी सुनिश्चित करता है।

देहाती आबादी के कंगालीकरण के साथ छोटी सम्पत्तिवालों का सम्पत्तिहरण बहुत तेज हुआ है। बाजार के सामान्य खरीद–बेच के मेकेनिज्म के जरिये तो यह हो ही रहा है, यह सीधे बल प्रयोग के जरिये भी हो रहा है। राज्य ने इस सम्पत्तिहरण में प्रत्यक्ष तौर पर पूंजीपति वर्ग की मदद की है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों से लेकर औद्योगिक क्षेत्रों तथा अन्य परियोजनाओं के लिए गरीब, छोटे–मझोले किसानों की जमीनों का अधिग्रहण इसमें प्रमुख है। इसके द्वारा राज्य छोटी सम्पत्ति वालों की सम्पत्ति को छीन कर उसे पूंजीपति वर्ग को सौंप रहा है। पूंजीपति वर्ग इस तरह बड़े पैमाने पर 'बेदखली के जरिये संचय' कर रहा है।

छोटी सम्पत्ति के इस अपहरण ने बड़े पैमाने पर प्रतिरोध संघर्ष को भी जन्म दिया है। नोएडा, नंदीग्राम, सिंगूर से लेकर लालगढ़ तक किसान अपनी जमीनों को बचाने के लिए उठ खड़े हुए हैं। छोटी सम्पत्ति के इस अपहरण के खिलाफ यही संघर्ष मध्य भारत के आदिवासी इलाकों में उस चीज के मूल में है जिसे मनमोहन सिंह आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा कहते हैं।

भारत के देहातों में पूंजीवादी विकास और अब भारत के पूंजीपति वर्ग की जरूरतों को देखते हुए भूमि हदबंदी कानूनों को बदलने की मांग पूंजीपति वर्ग द्वारा की जा रही है। यह पूंजीपति वर्ग द्वारा बड़े पैमाने पर कृषि योग्य जमीनों का केन्द्रीकरण करना सुगम बना देगा। यह देखते हुए कि किसानों की भारी आबादी कंगाली में जी रही है और 40 प्रतिशत किसान खेती नहीं करना चाहते, ऐसा कोई भी कदम खेती में केन्द्रीकरण की प्रक्रिया को तेज करेगा।

कृषि की शोचनीय स्थिति, किसानों की बढ़ती कंगाली और विश्व बाजार के साथ एकीकरण के चलते बाजार की तीखी उठा–पटक की मार झेलते किसानों की आत्महत्याएं बदस्तूर जारी हैं। केन्द्र सरकार द्वारा किसानों के ऋणों का सत्तर हजार करोड़ रुपये माफ करना भी इसे रोक पाने में असमर्थ है। महाराष्ट्र के विदर्भ में ठीक उसी समय जब ऋण माफ किये जा रहे थे तब किसान आत्महत्या कर रहे थे। अन्य सरकारी राहतों की तरह ऋण माफी का फायदा भी ज्यादातर बड़े किसानों ने उठाया था।

देहातों की छोटी सम्पत्ति की तरह शहरों की छोटी सम्पत्ति भी तबाह हो रही है और बड़ी पूंजी छोटी सम्पत्ति वालों का सम्पत्ति हरण कर रही हैं। शहरों में दस्तकारियों की और हाथ से काम करने वाले कुटीर उद्योगों की हालत दिनों–दिन खराब होती जा रही है। दिन–रात परिवार कि साथ मेहनत करने पर भी दो जून की रोटी का जुगाड़ नहीं हो पा रहा है। छुट्टे पूंजीवाद के इस दौर में स्वशोषण की इंतहां भी पेट भरने के लिए पर्याप्त नहीं हो पा रही है। बुनकरों के सारे केन्द्र आत्म हत्याओं की खबरों से भरे पड़े हैं। कर्ज में फांकर अपने परिवारी जनों, खासकर लड़कियों को बेचना आम खबर है।

पूंजीवाद हमेशा ही दस्तकारों और अन्य छोटे उत्पादकों को तबाह करता है। इनकी सम्पत्ति का सम्पत्तिहरण कर, उसका केन्द्रीकरण कर ही वह उत्पादक शक्तियों का विकास करता है। लेकिन पूंजीवाद की इस सांध्य बेला में भारतीय पूंजीवाद की विशेषता है कि यह छोटी सम्पत्ति वालों को तबाह कर उन्हें उजरती मजदूर नहीं बना रहा है बल्कि वह उन्हें रिजर्व आर्मी में भरती कर दे रहा है। अपनी छोटी सम्पत्ति से वंचित होकर लोग मजदूर नहीं बन रहे हैं बल्कि बेरोजगारों की पांत मे शामिल हो जा रहे हैं। वे जिन्दा रहने के लिए कुछ भी करने को मजबूर हैं। पूंजीपति वर्ग ने इस कुछ भी को अनौपचारिक क्षेत्र का शाकाहारी नाम दे रखा है।

इस तरह शहरों में भी कंगाली तेजी से बढ़ रही है और इसी के समान्तर वहां अपराध, नशाखोरी, वेश्यावृत्ति भी बढ़ रही है। इनसे राहत के लिए सरकार की ओर से कुछ न होने की स्थिति में गैर सरकारी संगठनों और बाबा–साधुओं की जमात फल–फूल रही है। सरकार केवल अपना दमनतंत्र मजबूत कर रही है।

शहरों और देहातों की इस कंगाली का सीधा असर मजदूर वर्ग पर पड़ रहा है। देहात से लेकर शहर तक, सेवा क्षेत्र से लेकर उद्योगों तक सब जगह मजदूरी गिर रही है। रिजर्व आर्मी में लगातार हो रही बढ़ोत्तरी मजदूरी गिरा रही है और पूंजीपतियों के मुकाबले मजदूरों की सौदेबाजी की क्षमता को कम कर रही है। स्थापित यूनियनें बेअसर हो रही हैं जबकि नयी यूनियनें बनाना अत्यन्त कठिन। दलाल, पतित यूनियन नेतृत्व और राज्य की सीधी मजदूर वर्ग विरोधी नीति के साथ यह वह कारक है जो मजदूरों की स्थिति को लगातार गिरा रहा है। श्रम शक्ति की बिक्री की शर्तें लगातार मजदूरों के खिलाफ होती जा रही हैं और मजदूर 100 साल पहले की स्थिति में धकेले जा रहे हैं। यह मजदूर वर्ग में बहुत तीखे रोष को जन्म दे रहा है। अन्दर ही अन्दर सुलगता यह लावा फूट पड़ने को तैयार है।

भारत का पूंजीपति वर्ग साम्राज्यवादियों के साथ मिलकर इसी तरह से आज पूंजी संचय कर रहा है। वह मजदूर वर्ग से बेशीश्रम के साथ आवश्यक श्रम का हिस्सा भी हड़प ले रहा है। वह छोटी सम्पत्ति वालों का बेशी श्रम, आवश्यक श्रम का एक हिस्सा और यहां तक कि उसकी सम्पत्ति भी हड़प ले रहा है। वह बेशी मूल्य पैदा कराने के जरिये संचय कर रहा है तो बेदखली के जरिये भी। परिणाम स्वरूप वह बड़े पैमाने की कंगाली, बेरोजगारी को जन्म दे रहा है और आम तौर पर मजदूर वर्ग के जीवन स्तर को नीचे गिरा रहा है। वह पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच की खाई को बेतहाशा बढ़ा रहा है। देश की अधिकाधिक आबादी गरीबी की रेखा के नीचे खिसकती जा रही है।

भारत के पूंजीपति वर्ग का यह पूंजी संचय देश के भीतर क्षेत्रीय असमानता को बहुत तेज गति से बढ़ा रहा है। असमान विकास पूंजीवाद का आम नियम है। लेकिन वर्तमान भारतीय पूंजीवाद में तो यह नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। एक ओर चांद पर जाने की तैयारी करने वाले लोग हैं तो दूसरी ओर बेहद पिछड़ा जीवन जीने वाले आदिवासी। एक ओर इंटरनेट से जुड़े लोग है तो दूसरी ओर सामान्य सड़क से भी वंचित लोग। मुंबई और बस्तर दोनों भारत के ही हिस्से हैं।

इस क्षेत्रीय असमानता ने पूंजीपति वर्ग के पूंजीवादी व्यवस्था के संचालन के लिए भांति–भांति से समस्या पैदा की है। आज देश के कई हिस्सों में नये प्रदेशों की मांग उठ रही है। केन्द्रीय संसाधनों के बंटवारे को लेकर भी प्रदेशों के बीच भारी खींच–तान है। कुल मिलाकर यह असमानता इस कदर बढ़ रही है कि यह पूंजीवादी भारत के ताने–बाने के लिए ही खतरा बन जा रही है।

देश की स्थिति में भारत की पूंजीवादी राजनीति भी विडम्बना का शिकार है। पिछले लोक सभा चुनावों में हालांकि कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में संप्रग गठबंधन दुबारा सत्ता में आ गया लेकिन कांग्रेस पार्टी बिना गठबंधन के अकेले शासन नहीं कर सकती। प्रदेशों के स्तर पर अभी भी क्षेत्रीय राजनीति दलों के शासन की भरमार है। भारतीय पूंजीपति वर्ग के हलकों में व्याप्त दो पार्टी राजनीति की आकांक्षा का कोई संकेत नहीं है कि क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपनी प्रासंगिकता खो दें या वे देश की दो बड़ी पार्टियों मे विलीन हो जायें। इसी तरह शहर और देहात के पूंजीपति वर्ग के बीच के अंतर्विरोध की वर्तमान अवस्था में यह भी नहीं दीखता कि कुलकों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टियां अचानक परिदृश्य से गायब हो जायें। इसलिए दो पार्टी राजनीति की भारतीय पूंजीपति वर्ग की आकांक्षा फिलहाल आकांक्षा ही बनी रहेगी।

पिछले चुनावों में कांग्रेस की जीत एक तरह से धुर विकल्पहीनता की अवस्था में जीत थी। यह साथ ही विभिन्न चुनावी समीकरणों का भी परिणाम था। किसानों की कर्जमाफी या नरेगा जैसी योजनाओं की भूमिका इसमें न्यून ही थी। लेकिन संप्रग और कांग्रेस की इस जीत ने भारत के पूंजीपति वर्ग को खासा उत्साहित किया क्योंकि उनकी नजर में अब मनमोहन–सोनिया की सरकार भाकपा–माकपा के अंकुश से मुक्त होकर निजीकरण–उदारीकरण–वैश्वीकरण की नीतियों को तेजी से लागू कर सकती थी। नयी सरकार ने इसे करने की तुरत–फुरत घोषणा भी कर दी। वर्तमान वैश्विक संकट ही किसी हद तक उनके हाथ बांधे हुए हैं।

पिछले चुनावों में भाजपा की हार हुयी और उसके नेता भी भौचक रह गये। देश की दुर्गति से वे आश्वस्त थे कि कंगाल और तबाह जनता अपनी इस स्थिति का जिम्मेदार संप्रग को मानेगी और उन्हें अपने आप ही सत्ता में आने का मौका मिल जायेगा। यदि वे 2004 के चुनावों में अपनी सरकार की उपलब्धियों से आश्वस्त थे तो संप्रग सरकार की जनता पर ढ़ाई गयी तबाही से। लेकिन तब की तरह इस बार भी वे खुशफहमी का शिकार साबित हुए।

भाजपा की इन चुनावों में पराजय से संघ परिवार की ताकत में कमी का निष्कर्ष निकालना गलत होगा। संघ परिवार की ताकत ज्यों की त्यों बनी हुई है। बल्कि उड़ीसा और कर्नाटक में इनके उन्मादी दंगों को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि वे ज्यादा आक्रामक हुए हैं। आज भी भाजपा की कई प्रदेशों में सरकारें हैं और पिछले सालों में इसने नये क्षेत्रें में विस्तार किया है। कुल प्राप्त वोटों में भी भाजपा का हिस्सा लगभग जस का तस बना हुआ है।

फिर भी भाजपा इस समय हतोत्साहित है। वह दिशाहीनता की स्थिति में है और उसमें आपसी विग्रह भी चरम पर है। शुचिता–अनुशासन इत्यादि की सारी बातें बीते समय की हो गई हैं। ऐसे में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक बार फिर आगे आया है और उसने भाजपा की कमान संभाली है। संघ और भाजपा के बीच दिखावटी दूरी इस संकट के समय गायब हो गयी है।

संघ के सामने स्पष्ट है कि पिछले दशक भर से अपनाया गया रणकौशल अब उसके लिए कारगर नहीं रह गया है। इस रणकौशल के तहत भाजपा ने हिन्दुत्व के मुद्दों को एक हद तक किनारे रखकर तथाकथित धर्मनिरपेक्ष छोटे दलों से गठबंधन किया था। उन्हें उम्मीद यह थी कि इसके माध्यम से वे केन्द्रीय सरकार पर काबिज हो जायेंगे और सरकारी तंत्र का इस्तेमाल कर अपने आधार का विस्तार कर लेंगे।

इस रणकौशल से भाजपा सत्ता में तो आ गई लेकिन इसे अपने आधार विस्तार में कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली। इसके विपरीत सत्तानसीन होने के फलस्वरूप इसके बीच आपसी प्रतियोगिता, विग्रह और जोड़–तोड़ तेज हो गई।

अब इस असफलता को पहचान कर संघ परिवार एक बार फिर कट्टर हिंदुत्व के अपने मूल एजेण्डे पर लौटने की कोशिश करेगा। उसके लिए इस बीच स्थितियां भी ज्यादा अनुकूल हुयी हैं। पिछली बार जब संघ परिवार का तेज बढ़ाव हुआ तब साथ ही दलित–पिछड़ी जातियों की जातिगत राजनीतिक गोलबंदी में भी उभार आया था। इसने धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण को एक हद तक रोका था। लेकिन अब स्थितियों में कुछ परिवर्तन हुआ है। बसपा भी बहुजन से सर्वजन की पार्टी की ओर बढ़ी है। ऐसे में अब धार्मिक आधाार पर ध्रुवीकरण का आधार पहले से ज्यादा मजबूत हुआ है। गुजरात में संघ परिवार ने इसी का इस्तेमाल किया है।

छोटी सम्पत्ति की भयंकर तबाही और शहरी पेटी बुर्जुआ की लगातार डांवांडोल होती जाती स्थिति संघ परिवार के धार्मिक फासीवादी उन्माद के लिए वर्गीय आधार प्रदान करती है। वर्तमान भारतीय पूंजीवाद में व्याप्त आम सांस्कृतिक व वैचारिक संकट भी इसके लिए अनुकूल माहौल प्रदान करता है।

राजनीतिक तौर पर भारत के पूंजीवादी शासकों द्वारा जिस तरह आतंकवाद को मुद्दा बनाया जा रहा है और उसे मुसलमानों से जोड़ा जा रहा है वह संघ परिवार के हाथों में बहुत मारक हथियार प्रदान करता है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा इस्लाम बनाम अन्य का 'सभ्यताओं का संघर्ष' का वैश्विक अभियान और उनके साथ भारतीय पूंजीपति वर्ग की जुगलबंदी इसे और आसान बना देती है। संघ परिवार हमेशा से ही अमेरिकी साम्राज्यवाद और इस्राइल प्रेमी रहा है। समूचे भारतीय पूंजीपति वर्ग द्वारा नरम हिंदुत्व को ग्रहण कर लेना संघ परिवार का यह आश्वस्ति प्रदान करना है कि समय आने पर भारत का पूंजीपति वर्ग उसके कठोर हिन्दुत्व को भी स्वीकार कर लेगा।

इसीलिए आने वाले समय में संघ परिवार आक्रामक रुख ग्रहण करेगा और मजदूर वर्ग के लिए भीषण खतरा पैदा करेगा। मजदूर वर्ग और कम्युनिज्म लिए प्रधान शत्रु होगा।

भाकपा और माकपा संशोधनवादियों की भी पिछले लोक सभा चुनावों में बुरी गत हुयी। पिछली संप्रग सरकार की सहयोगी बनकर उन्होंने पर्याप्त सत्ता सुख भोगा था। चार साल तक संप्रग की केन्द्रीय सरकार चलाने के बाद उन्होंने ऐन समय परमाणु करार को मुद्दा बनाकर सरकार से हाथ खीच लिया। असल में संप्रग के साथ मिलकर सत्ता सुख भोगने के बाद भी वे उसके पापों में भागीदार नहीं बनना चाहते थे। ऐन वक्त में विपक्ष की भूमिका में आकर वे अगले चुनावों में अपनी नैया पार लगाना चाहते थे। वास्तव में उन्होंने अपने जैसे ढ़ेरों अवसरवादियों को लेकर एक तीसरा मोर्चा गठित भी कर लिया। लेकिन उनका दांव काम नहीं आया और वे चुनावों के बाद संसद में भी काफी सिकुड़ गये।

भाकपा–माकपा जैसे संशोधनवादी एक लम्बे समय से भारतीय पूंजीपति वर्ग की सेवा करते हुए संसदीय दांव–पेंच में लगे हुए हैं। एक लम्बे समय तक उन्होंने मजदूर वर्ग को धोखा दिया कि वे मजदूर वर्ग की पार्टी

हैं। मजदूरों में उनका आधार बना भी रहा। लेकिन अब पानी सर से ऊपर गुजर चुका है। मजदूर वर्ग की क्रांति तो क्या वे मजदूर वर्ग के लिए सुधार के लिए भी लड़ने को तैयार नही हैं। वे मजदूर वर्ग की लगातार बदतर होती जाती स्थिति के खिलाफ भी लड़ने को तैयार नहीं हैं। वे केवल मजदूर वर्ग को अभी भी भ्रम में रखने के लिए कभी–कभी कुछ अनुष्ठानिक कार्रवाइयां कर लेते हैं।

ऐसे में मजदूर वर्ग स्वाभाविक तौर पर इन गद्दारों से दूर होता जायगा। जब इन्होंने सारी शर्मो–हया त्यागकर सीधो–सीधे नंदीग्राम और सिंगूर में पूंजीपति वर्ग के लिए छोटे मझोले किसानों की जमीन का सम्पत्तिहरण करना शुरू कर दिया तो मजदूरों किसानों का इनके खिलाफ खड़ा होना लाजिमी ही था। समय के साथ ये पूंजीपति वर्ग के पक्ष में और ज्यादा खड़े होते जायंगे तथा मजदूर–मेहनतकश जनता की निगाहों में अपने आप को और ज्यादा नंगे करते जायंगे हां, इसके बावजूद पूंजीपति वर्ग मजदूर वर्ग को धोखा देने के लिए इनका इस्तेमाल करता रहेगा।

इन्ही समयों में बसपा तेजी से बहुजन से सर्वजन की पार्टी बनने की ओर बढ़ी है। बसपा ने उत्तर भारत में, खासकर उत्तर प्रदेश में दलित जातियों के मध्यम और उच्च वर्ग के हितों को अभिव्यक्त करते हुए संसदीय राजनीति में दलित जातियों का अपने पीछे गोलबंद किया। बसपा के पीछे दलित जातियों की गोलबंदी साथ ही जाति व्यवस्था के उत्पीड़न के खिलाफ दलित जातियों का मुखर प्रतिरोध भी थी। इसके चलते दलित जातियों के जातिगत उत्पीड़न में कमी आई और दलितों के आत्म सम्मान में वृद्वि हुयी।

लेकिन बसपा की जातिगत गोलबंदी की सीमा थी। स्वयं जाति आधारित गोलबंदी ने विभिन्न दलित और पिछड़ी जातियों की अलग–अलग गोलबंदी को भी प्रोत्साहित किया। इसके जरिये इन जातियों के प्रभावशाली लोग संसदीय राजनीति में अपनी सौदेबाजी की क्षमता बढ़ाना चाहते थे। इसके चलते बसपा की पीछे गोलबंदी में बाधा पहुंची। दूसरी ढेरों अपेक्षाकृत सम्पन्न पिछड़ी जातियां बसपा के पीछे गोलबंद नहीं हो रही थी। या तो वे सपा, भाजपा के साथ जा रही थी या फिर स्वयं की गोलबंदी में लगी थी। इस सबकी वजह से संसदीय राजनीति के समीकरणों में बसपा का बहुजन नारा एक सीमा तक ही प्रभावी होकर रह गया। ऐसे में बसपा के दलित उच्च वर्ग नेतृत्व ने बहुजन का नारा छोड़ दिया और सर्वजन का नारा ग्रहण कर लिया। इससे अन्य जातियों, खासकर अभी तक बसपा के हमले का शिकार सवर्ण जातियों के बसपा के साथ आने का रास्ता खुल गया। इससे तात्कालिक तौर पर बसपा को सफलता भी मिली।

लेकिन बहुजन से सर्वजन की पार्टी बनने के साथ ही बसपा के अस्तित्व की खास जरूरत समाप्त हो गई। बसपा दलितों और अति पिछड़ों की गोलबंदी के लिए पैदा हुई थी, बाकियों और खासकर सवर्ण जातियों के खिलाफ अब यदि बसपा के दरवाजे सबके लिए खुल गये हैं तो इसकी विशिष्ट जरूरत समाप्त हो गयी है। अब यह अपने विशिष्ट आधार वाली व्यापक पार्टी बनने की ओर बढ़ गई है।

बसपा का यह कायांतरण जातिगत संरचना में परिवर्तन के एक गुणात्मक बिन्दु तक पहुंचने का सूचक है। दलित उभार के दबाव में भले ही ढेरों कम्युनिस्ट दलित सवाल पर सुधारवादी अवस्थिति की ओर ढुलक पड़ें, भारतीय समाज का यथार्थ अब वर्गीय लामबंदी के लिए पहले से कहीं ज्यादा अनुकूल हो गया है। जातिगत विभाजन की आड़ी–तिरछी काट अब वर्गीय लामबंदी के लिए उतनी परेशानी की बात नहीं रह गयी है। दलित और पिछड़ी जातियों के मजदूर वर्ग को अब ज्यादा आसानी से उन जातियों के पूंजीपति के मोहपाश से मुक्त किया जा सकता है। वक्त के साथ यह और ज्यादा सुगम होता जायेगा। मजदूर वर्ग कीयह लामबंदी भचिष्य में समाजवादी क्रांति के उप–उत्पाद के तौर पर जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न के सारे रूपों का सफाया कर देगी।

भारत के शासक वर्ग ने पिछले सालों में अमेरिकी साम्राज्यवादियों से सांठ–गांठ करने की, उनसे रणनीति संश्रय कायम करने की ओर कदम बढ़ाना जारी रखा है। इसी के तहत उन्होंने 2008 में अमेरिकी साम्राज्यवादियों से परमाणु समझौते को अंतिम रूप दे दिया। इसके लिए कांग्रेस पार्टी ने अपनी संप्रग सरकार को भी दांव लगा दिया। परमाणु समझौते में भारत के पूंजीपति वर्ग ने अपनी संप्रभुता से भी समझौता किया। उन्होंने यह कीमत इसलिए चुकाई कि उन्हें लगता है कि वे अमेरिकी साम्राज्यवादियों की मदद से वैश्विक लूट और क्षेत्रीय दादागिरी में उससे ज्यादा हासिल कर लेंगे। केवल परमाणु मामले में ही नहीं, दुनिया के अन्य मामलों में भी भारतीय शासकों को अपने को अमेरिकी साम्राज्यवादियों के हिसाब से ढालते देखा जा सकता है। ईरान, फिलीस्तीन का मामला हो या कोपेनहेगन में पर्यावरण सम्मेलन, सब जगह भी देखने में आ रहा है। भारत के पूंजीपति वर्ग ने बहुत घृणित ढंग से इस्राइल के साथ ताल–मेल कायम किया है।

लेकिन अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ रणनीतिक संश्रय कायम करते हुए भी भारत का पूंजीपति वर्ग निहायत अवसरवादी ढंग से अन्य साम्राज्यवादियों और शक्तियों के साथ अपने तोल–मोल में लगा है। वह रूसी

साम्राज्यवादियों के साथ लम्बे समय के परखे हुए रिश्तों की बात करता है तो ब्राजील और चीन के साथ मिलकर अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर सौदेबाजी करने का भी प्रयास करता है। वह अपने विकल्प खुले रख रहा है।

भारतीय पूंजीपति वर्ग की अंतर्राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं की सबसे सघन अभिव्यक्ति दक्षिण एशिया में होती है। अफगानिस्तान से लेकर वर्मा तक और तिब्बत से लेकर श्रीलंका तक यह जो कुछ कर रहा है वह इस पूंजीपति वर्ग के इरादों को स्पष्ट करता है।

अफगानिस्तान में भारत, तालिबान शासन के जमाने से सक्रिय रहा है। तब भारतीय शासकों ने तालिबान के खिलाफ उत्तरी मोर्चे को मदद दी थी जिसे रूस और ईरान भी मदद दे रहे थे। अब अपने रणनीतिक संश्रयी अमेरिकी साम्राज्यवादियों के अफगानिस्तान पर कब्जे के बाद भारतीय शासक अफगानिस्तान में और ज्यादा अपने पांव जमाने का प्रयास कर रहे हैं। वे वहां कई सारे निर्माण कार्यों में लगे हुए हैं। भारतीय शासकों का इरादा अफगानिस्तान में पाकिस्तान का मुकाबला करने के साथ अपने स्वयं के प्रभाव का विस्तार करना है। वे अफगानिस्तान तक अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना चाहते हैं। अपनी इन नापाक हरकतों की वजह से वे लगातार वहां हमले का निशाना बन रहे हैं।

दूसरी ओर पूर्वी छोर पर वे म्यांमार (बर्मा) में चीन के साथ प्रतियोगिता रत हैं। प्राकृतिक संसाधानों से संपन्न म्यांमार पर साम्राज्यवादियों की भी नजर है। फिलहाल म्यांमार के सैनिक तानाशाह साम्राज्यवादियों से बहुत ज्यादा ताल–मेल नहीं कर रहे हैं इसलिए साम्राज्यवादी, खासकर अमेरिकी साम्राज्यवादी उनके खिलाफ 'मानवाधिकार' और लोकतंत्र' का अभियान छेड़े हुए हैं। भारत के शासक इसकी चिंता न करके वहां अपने प्रभाव का विस्तार कर रहे हैं। वे वहां बंदरगाह बना रहे हैं, थाईलैण्ड तक जाने वाली सड़क का निर्माण कर रहे हैं। म्यांमार के सैनिक तानाशाह अपने हितों के मद्देनजर भारत और चीन के शासकों के बीच संतुलन बैठा रहे हैं।

अपनी विस्तारवादी नीतियों के चलते भारतीय शासकों के बांग्लादेशी शासकों के साथ संबंध भी किंचित तनावपूर्ण चल रहे हैं। यह गाहे–बगाहे सीमा पर तनाव के रूप में भी फूट पड़ता है। भारत सरकार समय–समय पर इस बात को उछालती रहती है कि उत्तर पूर्व के विद्रोहियों को बांग्लादेश के जंगलों–पहाड़ियों में पनाह मिली हुई है तथा भारत में आतंकी हमलों के सूत्र बांग्लादेश में स्थित जेहादी ग्रुपों से जुड़े हुए हैं। अपने रणनीतिक संश्रय के बावजूद अमेरिकी साम्राज्यवादियों की बांग्लादेश में बढ़ती पहुंच भारतीय शासकों के लिए चिंता का विषय है।

श्रीलंका में तमिलों और लिट्टे के खिलाफ श्रीलंकाई सरकार के युद्व में भारत सरकार ने पूरी मदद की। वह श्रीलंका में अलग तमिल राष्ट्र के निर्माण की स्थिति में ग्रेटर तमिल एलम की मांग उठने से भयभीत थी। उसने श्रीलंकाई सेना द्वारा तमिलों के कत्लेआम का दिखावटी विरोध भी नहीं किया। श्रीलंका में भारत सरकार का किस हद तक दखल है वह इस बात से समझा जा सकता है कि राष्ट्रपति राजपक्षे की सरकार ने सेना द्वारा संभावित तख्तापलट की स्थिति में भारत सरकार से मदद मांगी थी। आने वाले समय में भारत सरकार स्वयं तमिल समस्या को लेकर भी वहां हस्तक्षेप जारी रखेगी।

नेपाल में भारत सरकार लगातार प्रयासरत है कि नेपाल की क्रांति को आगे बढ़ने से रोक दिया जाय और एक नेकपा (माओवादी) को संसदीय दायरे में बांधकर नेपाल को बुर्जुआ लोकतंत्र तक सीमित कर दिया जाय। नेपाल के बुर्जुआ शासकों के साथ अपने पुराने संबंधों का वे जमकर इस्तेमाल कर रहे हैं। नेपाल की लम्बे समय से भारत पर निर्भरता इसमें इनके काम आ रही है। भारत के शासक नहीं चाहते कि नेपाल एक संप्रभुत्ता सम्पन्न देश के रूप में अपने भविष्य का निर्धारण करे और समाजवाद के रास्ते पर जाय। वे इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर सीधे सैनिक हस्तक्षेप से भी नहीं चूकेंगे।

भूटान और मालदीव को तो भारत के शासक अपने एक छोटे से प्रदेश से ज्यादा अहमियत नहीं देते।

दक्षिण एशिया में भारतीय शासकों के लिए सबसे परेशानी का सबब पाकिस्तानी शासक बनते हैं। वे भारतीय शासकों की क्षेत्रीय दादागिरी को चुनौती देते हैं। घृणित भारतीय शासक इसीलिए इस हद तक जाने को तैयार हैं कि पाकिस्तान का विखंडन हो जाय। इसके लिए वे पाकिस्तान में भांति–भांति की शक्तियों को शह दे रहे हैं। यह अलग बात है कि पाकिस्तान के विखंडन की अवस्था में भारतीय शासकों के लिए कोई कम समस्या नहीं पैदा होगी। अपनी बारी में पाकिस्तानी शासक भी भारत में समस्या पैदा करने की हर चंद कोशिश करते हैं। इस बीच दोनों ही देशों के शासक एक दूसरे के खिलाफ अंधराष्ट्रवादी भावनायें भड़काने का पूरा प्रयास करते हैं। भारत में पाकिस्तान विरोधी अंधराष्ट्रवाद हिन्दू साम्प्रदायिकता के साथ मिलकर और ज्यादा घातक हो जाता है।

दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय दादागिरी में व्यस्त भारत का शासक पूंजीपति वर्ग दूरगामी तौर पर चीन को अपना प्रतिद्वंद्वी समझता है। हालांकि पिछले सालों में दोनों के बीच आर्थिक संबंध बहुत बढ़े हैं लेकिन दोनों एक–दूसरे को लेकर आशंकित हैं। भारतीय शासकों का अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ रणनीतिक संश्रय

अंशतः चीन के खिलाफ भी है। चीन को घेरने के लिए जापान, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के संभावित संश्रय की बात भी इसी दिशा में है। इसी के मद्देनजर भारत में कुछ समय से शासक वर्गों द्वारा चीन विरोधी भावनाएं भड़काने का प्रयास किया जा रहा है। वह माहौल बनाया जा रहा है जिसमें भारतीय जनता चीन के साथ किसी टकराव के लिए तैयार हो जाय।

अपनी आर्थिक–राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के तहत ही भारत के पूंजीपति वर्ग ने खाड़ी क्षेत्र और अफ्रीका में अपने पांव पसारे हैं। इन क्षेत्रों में भी वह चीन से प्रतिद्वन्द्विता करने का प्रयास कर रहा है। भारत की सार्वजनिक और निजी कंपनियों ने बड़ी मात्र में इन क्षेत्रें में पूंजी निवेश किया है। भारत का पूंजीपति वर्ग यहां से तेल–गैस एवं अन्य कच्चे मालों की आपूर्ति के लिए प्रयास कर रहा है। यह भारत के फलते–फूलते पूंजीपतियों के लिए पूंजी निवेश का क्षेत्र भी उपलब्ध करा रहा है। गौरतलब है कि भारत के पूंजीपति अब बड़ी मात्र में विदेशों में पूंजी निवेश कर रहे हैं।

निजीकरण–उदारीकरण–वैश्वीकरण के दौर में भारतीय समाज सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर तेज गति से उथल–पुथल का शिकार हुआ है। एक ओर उपभोक्तावादी संस्कृति का तीव्र गति से प्रसार हुआ है तो दूसरी ओर बढ़ती बेरोजगारी एवं कंगालीकरण ने वंचना को बढ़ाया है। इसने खासकर युवाओं में गंभीर विकृतियों को जन्म दिया है। अपराध, नशाखोरी इत्यादि में लगातार वृद्वि हो रही है। पुरानी मूल्य–मान्यताओं के तेज विध्वंस ने उपभोक्तावाद के साथ मिलकर एक मनोरोगी समाज का निर्माण किया है। स्त्रियों के प्रति हर प्रकार की हिंसा में निरंतर वृद्वि हो रही है। बेरोजगारी से उपजे असंतोष को शिवसेना और मनसे जैसी प्रतिक्रियावादी शक्तियां भुना रही हैं।

शासक वर्ग महिला सशक्तीकरण इत्यादि की जितनी बातें कर रहा है उतनी ही तेज गति से समाज में महिलाओं के खिलाफ अपराधों में बढ़ोत्तरी हो रही है। पतित सामंती पितृसत्तात्मक संस्कृति के साथ मिलकर उपभोक्तावाद महिलाओं के लिए बहुत विषम स्थितियां पैदा कर रहा है। खासकर महिला मजदूरों की स्थिति विकट हो रही है। शासक वर्ग महिला आरक्षण का झुनझुना बजाने के अलावा कुछ नहीं कर रहा है।

संघ परिवार ने मुसलमानों के साथ इसाइयों को भी निशना बनाने का पूरा प्रयास किया है। ओडिसा से लेकर कर्नाटक तक इसके द्वारा योजनबद्ध कार्रवाइयां की गई हैं। शासक वर्ग की कांग्रेस या क्षेत्रीय पार्टियां संघ परिवार का तुष्टिकरण कर रही हैं। इसके साथ ही वे मुसलमानों के लिए आरक्षण और उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार का प्रभावहीन नुस्खा प्रस्तावित कर रही हैं।

यही है देश की समग्र स्थिति लेकिन इसी के साथ यह भी सच्चाई है कि देश में भांति–भांति के स्वतः स्फूर्त आंदोलन फूट रहे हैं। एक ओर पूंजीपति वर्ग एवं उसकी सरकार अधिकाधिक दमन पर उतर रही है तो दूसरी ओर जनता भी लगातार संघर्षों की ओर बढ़ रही है।

घोषित विशेष आर्थिक क्षेत्रें या नये औद्योगिक क्षेत्रों में किसानों ने अपनी जमीनों से बेदखल किये जाने के खिलाफ कई सारे जुझारू संघर्ष लड़े हैं। नंदीग्राम, सिंदूर, नवीं मुंबई और नोएडा इनमें प्रमुख हैं। उदारीकृत पूंजीवादी में लगातार तबाही की ओर बढ़ रहे किसान अपनी इस बलपूर्वक बेदखली को चुपचाप नहीं सहन कर रहे हैं।

इसी तरह छोटे–मझोले किसानों ने कई संघर्ष सरकारी राहतों में कटौती के खिलाफ और फसलों के उचित मूल्य के लिए लड़े हैं। इन आंदोलनों का नेतृत्व अक्सर ही धनी किसानों के हाथ में रहा है और वे ही सबसे ज्यादा लाभान्वित हुए हैं। लेकिन ये संघर्ष छोटे–मझोले किसानों की बदहाल होती स्थिति के खिलाफ प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हैं।

पिछले सालों में भारत के पूंजीपति वर्ग ने देश के आदिवासी इलाकों में पूरी बेशर्मी के साथ अपने लुटेरे चरित्र का प्रदर्शन किया है। इन इलाकों में मौजूद खनिज सम्पदा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने के लिए उसने बिना किसी लिहाज के आदिवासी जनों को उनकी जमीनों से खदेड़ा है और उन्हें नदी–जंगल तक पहुंच से वंचित किया है। सलवा जुडुम जैसे शासक वर्गीय अभियानों की आड़ में यह खूब किया गया है। अपनी इस बेदखली और उजाड़े जाने के खिलाफ आदिवासी जनों ने भीषण संघर्ष किया है। मेधा पाटेकर जैसे एनजीओ और आदिवासियों से लेकर भाकपा (माओवादी) तक के नेतृत्व में ये संघर्ष चल रहे हैं।

पिछले सालों में मजदूर वर्ग ने अनेक शानदार संघर्ष लड़े हैं। संशोधनवादियों और अन्य बुर्जुआ दलाल ट्रेड यूनियन नेताओं के बावजूद मजदूरों ने जूट मिलों से लेकर गुडगांवा के आटो उद्योग तक प्रेरणाप्रद संघर्ष लड़े। खासकर गुडगांवा के संघर्ष में मजदूरों ने अनुकरणीय एकता का प्रदर्शन किया। इसने आने वाले मजदूर संघर्षों की एक झलक दिखलाई। देश के विभिन्न क्षेत्रें में बेरोजगारी की भंयकर मार के बावजूद मजदूरों ने अनेक फैक्टरियों में हड़तालें कीं। मजदूर वर्ग में सुगबुगाहट अब स्पष्ट है।

राष्ट्रीयताओं के आंदोलन बदस्तूर जारी हैं। शासक वर्ग इन्हें शान्त करने के लिए सौदेबाजी और जोड़–तोड़ की नीति पर लगातार चल रहा है। इसने कश्मीर और असम दोनों जगह इसके लिए पुरजोर प्रयास किया है। लेकिन राष्ट्रीयता की ये गंभीर समस्यायें किसी जोड़–तोड़ से हल नहीं हो सकती।

दुनिया के कई देशों की तरह भारत का शासक वर्ग भी चैन से शासन नहीं कर पा रहा है। एक ओर वह अपने तेज पूंजीवादी विकास से खुश नजर आ रहा है तो दूसरी ओर ठीक इसी विकास से तीखे हुए अंतर्विरोधों से उसकी नींद हराम हुई जा रही है। एक ओर वह विश्व में एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरने का सपना देख रहा है तो दूसरी ओर उससे अपना देश ही संभाले नहीं संभल रहा है। विकसित देशों की पातों में शामिल होने का ख्वाब पालने वाला पूंजीपति वर्ग अधिकांश आबादी को दून जून की रोटी भी सुनिश्चित नहीं कर पा रहा है। यही नहीं, वह अधिकाधिक आबादी को भुखमरी में ढकेल रहा है।

देश की अधिकांश जनता को रोटी से वंचित कर वह इसके लिए गोली का प्रबंध कर रहा है। जैसे–जैसे इसके खिलाफ असंतोष की ज्वालाएं भड़कती जा रही हैं, वैसे–वैसे यह और ज्यादा दमनात्मक होता जा रहा है। वह अपने दमन तंत्र को और ज्यादा मजबूत कर रहा है। अक्सर ही वह यह आतंकवाद विरोध के नाम पर कर रहा है।

लेकिन अपने दमन तंत्र को इस तरह लगातार मजबूत बनाने की इसकी जरूरत ही इसकी कमजोरी का सबसे बड़ा प्रमाण है। तात्काालिक तौर पर यह दमन में भले कामयाब हो जाय पर दूरगामी तौर पर वह ढह जाने के लिए, परास्त हो जाने के लिए अभिशप्त है। उस शासन के दिन बहुत नहीं रह जाते जो केवल लाठी–गोली, जेल–फांसी के जरिये ही सत्ता में टिके रह पाने में सक्षम हो। भारत का पूंजीपति वर्ग यहीं पहुंच गया है।

ऐसे में हमें इस पूंजीपति वर्ग का तख्ता पलट करने के लिए, इसे उखाड़ फेंकने के लिए मजदूर वर्ग को प्राणप्रण से संगठित करने की जरूरत है। केवल मजदूर वर्ग ही वह वर्ग है जो अपने पीछे अन्य शोषित–उत्पीड़ित वर्गों और तबकों को लामबंद कर पूंजीपति वर्ग को सत्ताच्युत कर सकता है। केवल वहीं पूंजीवाद को उखाड़ फेंककर नये समाज, समाजवाद को स्थापित करने की ओर बढ़ सकता है जिसका अंतिम लक्ष्य कम्युनिज्म होगा। अन्य किसी वर्ग या तबके के स्वतंत्र आंदोलनों का कोई भविष्य नहीं है।

पिछले कुछ समय से सरकार ने नक्सलवाद और खासकर भाकपा (माओवादी) के हथियारबंद संघर्ष को देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा घोषित कर रखा है। लेकिन असल में पूंजीपति वर्ग और इसकी सरकार का इरादा इसकी आड़ में आदिवासी क्षेत्रें में आदिवासियों को बेदखल कर खनिज पदार्थों, जंगली, नदियों के दोहन के लिए और वहां उद्योग लगाने के लिए निर्बाधा पहुंच बना लेना है। भाकपा (माओवादी) का आदिवासी जनता को इसके खिलाफ हथियार बंद संघर्ष में लामबंद करना सरकार के लिए बाधा है। सरकार इस बाधा को हटाना चाहती है। यह पूंजीपति वर्ग के पूंजीवादी विकास की पुरातन लेकिन चिर नवीन प्रक्रिया है। इसी के जरिये पिछड़े आदिवासी पूंजीवाद में समाहित किये जायेंगे।

भाकपा (माओवादी) का वीरतापूर्ण संघर्ष आदिवासियों की बेदखली के खिलाफ जायज संघर्ष होते हुए भी भारतीय क्रांति की वस्तुगत प्रक्रिया से बेमेल है। यही नहीं, जिस हद तक यह आतंकवादी तौर–तरीकों का इस्तेमाल करता है, वह क्रांति को नुकसान पहुंचाता है। भाकपा (माओवादी) की क्रांति की रणनीति भारत की वस्तुगत परिस्थितियों से बेमेल है। इस रास्ते से भारत की क्रांति आगे नहीं बढ़ सकती। इस रूप में यह क्रांति की बहुमूल्य शक्तियों का अपव्यय है।

भारत की क्रांति प्रथमतः मजदूर वर्ग को इंकलाब के लिए गोलबंद करने से आगे बढ़ेगी। मजदूर वर्ग ही बाकी क्रांतिकारी वर्गों–तबकों को अपने पीछे इंकलाब के लिए गोलबंद करेगा। भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को इसीलिए मजदूर वर्ग को खासकर औद्योगिक मजदूर वर्ग को इंकलाब के लिए गोलबंद करने का काम प्राथमिकता में अपने हाथ में लेना चाहिए। इसी प्रक्रिया में भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों में एकता और अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के पुनर्गठन का मार्ग भी प्रशस्त होगा। पिछले तीन सालों में देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में एकता की चेष्टा बढ़ी है हालांकि कुछ टूट–फूट भी हुई है। अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का पुनर्गठन हमारा आज सर्वप्रमुख कार्यभार है।

आइये हम इस प्रक्रिया में अपना योगदान देने के लिए मजदूर वर्ग को क्रांति के लिए संगठित करने में जुट जायं।

इंकलाब जिंदाबाद!